सत्साहित्य-ग्रन्थमाला—ग्रन्थ ५ ।

पद्य-प्रमोद

लेखक—

साहित्यरत्न पं० अयोध्या सिंह जी उपाध्याय ।

ग्रन्थमाला मालाकार—

राम दहिन मिश्र ।

सत्साहित्य-ग्रन्थमाला—ग्रन्थ ५ ।

पद्य-प्रमोद ।



लेखक—

साहित्यरत्न प० अयोध्या सिंह जी उपाध्याय (हरिऔध)

ग्रन्थमाला-मालाकार,

राम दहिन मिश्र काव्यतीर्थ ।

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
करोति कीर्तिं प्रीतिञ्च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥

प्रकाशक—

ग्रन्थमाला कार्यालय,

बाँकीपुर ।

१९१७

प्रथम संस्करण १०००] [मूल्य ॥)



ठाकुर श्रीजगज्जीत सिंह क्षत्रिय, तअल्लुकेदार
पवाँया (हरदोई)



साहित्य रत्न प० अयोध्यासिंह उपाध्याय।

भूमिका।



साहित्य सहृदय-हृदय व्यक्तियों का हृदयोद्गार है। उसमें काव्य का प्रधान स्थान है। कविता द्वारा व्यक्त किये हुए भावों को पढ़ कर, समझ कर और अनुभव कर सभी भावुक विमुग्ध होते हैं। समय २ पर प्राकृतिक, नैतिक, सामाजिक और मानसिक अवस्थाओं में देश, पात्र और कालानुसार जो जो परिवर्तन हुआ करते हैं उनका चित्ताकर्षक चित्र यदि कोई देखना चाहे तो कृती कवियों की कृति में भली भाँति देख सकता है। सत्कवि के ऐसे ही शब्द चित्रों से नाना प्रकार के सच्चे मनोराग उत्पन्न होते हैं और उनका प्रत्यक्ष फल दीख पड़ता है। यही कविता का प्रधान कार्य है।

जो आनन्द महाकाव्य, काव्य और खण्डकाव्य आदि के पढ़ने में मिलता है वह समह-काव्य के पढ़ने में कहीं बढ़ जाता है। क्योंकि समह-काव्य में विविध भाँति के विषयों पर विशेष समय में लिखे हुए विशिष्ट वर्णन मिलते हैं। यद्यपि काव्यादि में प्राय प्रसङ्गानुसार बहुत विषयों का वर्णन हो जाता है पर उनमें कथा, प्रकरण आदि के विचार से वर्णन में किसी न किसी प्रकार सङ्कोच हो ही जाता है। यह बात सग्रह-काव्य में नहीं रहती। उसके प्रत्येक विषय में कवि स्वतन्त्र है।

साहित्यरत्न पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय कैसे काव्य-कला-कुशल, शब्दशिल्पी, सत्कवि और सुलेखक हैं—यह हिन्दी-संसार विशेष रूप से जानता है। आप का पाण्डित्य प्रगाढ़, बुद्धि तीक्ष्ण, विचार उत्तम, कवित्व-शक्ति निस्सीम और प्रतिभा अप्रतिहत है। हिन्दी तो आपकी अनुगत सी ज्ञात होती है। आप उसे जिस ढाँचे में ढालना चाहते हैं ढाल देते हैं। कोई भी मर्मज्ञ पाठक हिन्दी-संसार में नव नव युग के प्रवर्तक और नयी २ सृष्टि के स्रष्टा उक्त उपाध्याय जी के 'ठेठ हिन्दी के ठाट' 'अधखिला फूल' से सरस और शिक्षाप्रद उपन्यास 'प्रियप्रवास' सा महाकाव्य और इन ग्रन्थों की तथा उपाध्याय जी की संकलित "कबीरवचनावली" की विवेक और पाण्डित्य-पूर्ण शत-शत पत्र से भी अधिक भूमिका पढ़ कर मेरी इन उक्तियों को अत्युक्तियों में परिगणित नहीं करेगा। आप की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से क्या देशी और क्या विदेशी, सभी साहित्य-सेवियों ने की है। आप की गणना महाकवियों में होती है। उपाध्याय जी जैसे महाकवि, सहृदय, भावुक, और विज्ञ हैं, यह तो पद्य-प्रमोद पढ़ कर भी पाठक जान सकेंगे।

मैं अपने उपर्युक्त वक्तव्य की परिपुष्टि में उपाध्याय जी के सम्बन्ध की दो चार सम्मतियों का कुछ अंश उद्धृत करता हूँ।

"आप हिन्दी में एक प्रसिद्ध लेखक हैं। यद्यपि आपकी रचनायें अधिक नहीं हैं तो भी जो कुछ अब तक आपने लिखा है वह विशेष बहुमूल्य है।"।— (माडर्न रिव्यू, अपरैल १९१६)

हमको यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि वर्तमान समय

में जितने काव्य ग्रन्थ निकले हैं उनमें पण्डित अयोध्यासिंह की कविता विषय और भाषा शैली दोनों के विचार से सब से आगे की पँक्ति में स्थान ग्रहण करेगी"— (लीडर, १८ मई १९१६)

उनके सरस और हृदयग्राही स्फुट कविताओं के पाठ से हमें उनके एक सुकवि होने का पूर्ण विश्वास था पर हमें इस बात का ध्यान न था कि श्रीयुत उपाध्याय जी की 'प्रतिभा' कार्यकारिणी शक्ति में हिन्दी साहित्य संसार भर में अधिक बलवती है और इस खड़ी बोली के नवयुग में वह हम लोगों का आदर्श बनकर मार्ग प्रदर्शक हो सकेगी'।

'गद्य लिखने में—नयी शैली के हिन्दी लिखने में 'हरिऔध' जी ही हिन्दी संसार में अद्वितीय हैं।

'हिन्दी भाषा पर ऐसा अपूर्व अधिकार रखनेवाले एक प्रसिद्ध विद्वान् ग्रन्थकार का महोच्च कवि की प्रतिभा शक्ति से सम्पन्न होना हिन्दी-संसार के लिये गौरव का विषय है।

(स्वदेशबान्धव, अगस्त १९१५)

'हिन्दी के वर्तमान महाकवियों में साहित्यरत्न पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय का नाम बड़ी प्रतिष्ठा के साथ लिया जाता है।

उपाध्यायजी की कविता बड़ी ही सरस और सरल होती है। हिन्दी लेखकों में आपही एक ऐसे गद्य पद्य लेखक हैं जिनके विषय में निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि ठेठ हिन्दी के शब्दों का तो मानो आपने ठेका ही ले रक्खा है'। (विद्यार्थी, आश्विन १९७३)

इस ग्रन्थ में उपाध्याय जी की मनोहारिणी, रसभरी और नवजीवन डालने वाली खड़ी बोली की सब श्रेणी की सारी कविताओं का संग्रह है। इसकी चार पाँच कविताओं को छोड़ कर सभी संगृहीत कवितायें प्रसिद्ध प्रसिद्ध मासिक पत्रों

में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें से १७ कवितायें सरस्वती में, १६ मर्यादा में, १२ विद्यार्थी मे और अन्यान्य कवितायें मनोरञ्जन, प्रभा, इन्दु, तरङ्गिणी, सम्मेलन-पत्रिका, नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि में सादर स्थान पा चुकी हैं। कविताओं की उत्तमता के सम्बन्ध में इन पत्र-पत्रिकाओं का नाम लेना ही अलम् होगा। इसके अतिरिक्त इसकी बहुत सी ऐसी कवितायें हैं जो इधर की पाठ्य पुस्तकों में शत २ बार उद्धृत होकर छप चुकी हैं। प्राय सगृहीत कवितायें राजभक्ति, हिन्दी प्रेम, जातीयता और सुविचार-परम्परा के निदर्शक हैं।

सगृहीत कवितायें कैसी हृदय-ग्राहिणी और भावमयी हैं यह सहृदय पाठकों से कहना न पडेगा। यद्यपि सभी ही अपने रग ढग की निराली हैं तथापि दो चार की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर देना मैं उचित समझता हूँ। हो सकता है कि 'भिन्नरुचिर्हि लोक' होने के कारण मैं जैसा उन्हें पसन्द करता हूँ अन्यान्य पाठक न पसन्द करें, पर अपने मन के भाव प्रकाश कर देने में कोई हानि नहीं है। प्रभुप्रताप, धर्म-वीर और कर्मवीर यह त्रिरत्न पढनेवालों के मन मे मन्त्र से कान में फूक कर विचित्र भाव पैदा करता है। 'चित्तौड की शरद रजनी' एक हृदय-स्पर्शी दृश्य दिखलाती हैं। 'जातीय भाषा' और 'हिन्दी भाषा' से हृदय में उत्साह भर उठता है। 'हृदयोद्गार' शीर्षक की सभी कवितायें पठनीय और विलक्षण हैं। 'आँख का आँसू, ' गुलाब का फूल ' और ' मतलब की दुनिया' आदि कवितायें अनुभवनीय, मननीय और अवलोकनीय हैं।

आपकी कवितायें प्रसाद-गुण-विशिष्ट होने पर भी गम्भीर होती हैं। उनमें ऐसी बातें रहती हैं जिन्हें बारबार पढ़कर अभ्यस्त करने का जी चाहता है। और यह आप की कविता का विशेष गुण है।

प्रस्तुत 'पद्यप्रमोद' के मोदप्रद पद्यों को प्राय पाठकों ने पढ़ा होगा। उनके लिये नये न होने पर भी छन्द के सम्बन्ध मे एक बात कह देना आवश्यक प्रतीत होता है। इसके कुछ पद्य ऐसे हैं जो फारसी भाषा के छन्दों से सम्बन्ध रखते हैं। ये न वर्णवृत्त हैं और न मात्रावृत्त ही। वे उच्चारण-वैचित्र्य (वजन) पर निर्भर करते हैं। केवल संस्कृत और हिन्दी जानने वालों को ये कुछ विषम प्रतीत होंगे, किन्तु वे साहित्य-नियम के अन्तर्गत हैं। यह ढग खडी बोली की कविता प्रचार के समय से ही उर्दू पद्यों के साहचर्य्य से हिन्दी भाषा मे गृहीत हैं।

मेरे पास छपने के बहुत पहले 'पद्यप्रमोद' की हस्त-लिखित प्रतिलिपि आयी थी। उपाध्याय जी ने दूसरे की लिखी उस प्रतिलिपि को देखा नही था। जब मैंने प्रेस में कापी पढ़कर छपने को भेज दी तब उन्होंने उसे एक बार पढ़ना चाहा। अतएव, उन्हीं के पास प्रूफ भेजने का बन्दोबस्त कर दिया गया। विषय-विभाग भी उन्हीं का किया हुआ है। मैं उनके इन कृपामय कार्यों का बड़ा ही आभारी हूँ।

ग्रन्थमाला-मालाकार।

राम दहिन मिश्र।

शुद्धाशुद्ध पत्र।



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२०	गोद खुली	अङ्क खुला	१६६	३	ऐसी	ऐसी कितनी
३	३	मरु	मरु	१६८	१२	लोभ	लोभ
४	१७	बल,विद्या	विद्या, बल	१६६	३	जो	जो है
७	५	सम्मान	ससम्मान	१७३	६	को	का
३०	१६	सॅगवॉ	सॅग, वॉ	१७८	१७	जन	जव
३४	४	सयलना	सयतता	१८५	१४	जन्में	जनमें
४७	५	वायु	वात	१८५	१६	है विकाश	विकाश है
७२	१७	विलोकति	विलोकती	१८५	२०	कहीं भली है	
८६	६	शिर	शिरपर				कहीं है भली
६०	३	जातीय	जातीयता	१८६	२	खिला	है खिला
६०	२२	चाहिये	चहिये	१८६	५	आवे	आये
१००	१	शुच	शुचि	१८६	१६	पठता	पॅठता
१४१	२६	अपनीसारी	अपनी मारी	१८८	५	फर	कर
१४३	१,२	अछूटी	अछूती	१८६	२	आॅखे	आॅखें
१६५	१४	फर	करके	१८६	१७	रहता	रहना

इनके अतिरिक्त कहीं व ब, ड ड़, वो औ य व, में उलट फेर हो गया है। अनुस्वार और चन्द्रविन्दु में भी यह बात है। कृपया पाठक इन्हें सुधार कर पढ़ेंगे।

सूचीपत्र ।

पद्य-प्रमोद ।



प्रभु-प्रताप ।

[षट्पद]

चाँद औ सूरज गगन में घूमते हैं रात दिन ।
तेज औ तम से, दिशा होती है उजली औ मलिन ॥
वायु बहती है, घटा उठती है, जलती है अगिन ।
फूल होता है अचानक वज्र से बढ़ कर कठिन ॥
जिस निराले काल के भी काल के कौशल के बल ।
वह करे, सब काल में संसार का मङ्गल सकल ॥ १ ॥
क्या नहीं है हाथ में उसके, वह क्या करता नहीं ।
चाहता जो कुछ है वह, फिर, वह कभी रुकता नहीं ॥
सुख नहीं पाता है वह, जिस पर है वह ढरता नहीं ।
कौन फिर उसको भरे? जिस को कि वह भरता नहीं ॥
जितनी हैं करतूत उसकी वह निराली हैं सभी ।
उस के भेदों का पता कोई नहीं पाता कभी ॥ २ ॥

कितने हीं सुन्दर वसे नगरों को देता हे उजाड ।
धूल कर देता हे ऊँचे ऊँचे कितने हीं पहाड ॥
एक झटके में करोड़ों पेड़ लेता है उखाड ।
इस सकल ब्रह्मांड को पलभर में सकता है बिगाड ।
उसके भय से कॉपते हैं देवते भी रात दिन ।
मोम हो जाता है वह भी, जो है पत्थर से कठिन ॥ ३ ॥
राज पा कर जिसको करते देखते थे हम विहार ।
माँगता फिरता है वह कल भीख, हाथों को पसार ॥
एक टुकडे के लिये जो घूमता था द्वार द्वार ।
आज धरती है कॅपाती उसके धौंसे की धुकार ।
नित्य ऐसी कितनी ही लीला किया करता है वह ।
रंक करता है, कभी सिर पर मुकुट धरता है वह ॥ ४ ॥
कितने ही उजडे हुए घर को बसाता हे वही ।
कितने ही बिगडे हुए को भी बनाता है वही ॥
गिरने वाले को पकड कर के उठाता है वही ।
भूलने वाले को सीधा पथ दिखाता है वही ॥
इस धरा पर है नहीं सुनता कोई जिसकी कही ।
उस दुखी की सब बिथा सुनता, समझता है वही ॥ ५ ॥
डाल सकता सीस पर जिसके पिता छाया नहीं ।
गोद माता की खुली जिसके लिये पाया नहीं ॥
है पसीजी देखकर जिसकी बिथा जाया नहीं ।
काम आती दीखती जिसके लिये काया नहीं ॥
बॉह ऐसे दीन की है प्यार से गहता वही ।
सब जगह सब काल उसके साथ है रहता वही ॥ ६ ॥
वह अँधेरी रात, जिसमें है घिरी काली घटा ।
वह निकट जगल, जहाँ पर शेर रहता है डटा ॥

यह महा मरघट, पिशाचों का, जहाँ है, जम घटा ।
यह भयकर ठाम जो है लोथ से बिल्कुल पटा ॥
मत डरो ये कुछ किसी का कर कभी सकते नहीं ।
क्या सफल ससार पाता है पडा सोता कहीं ॥ ७ ॥
जिस महा मरु भूमि से कढती सदा है लू लपट ।
वारि की धारा मधुर रहती उसी के है निकट ॥
जिस विशद जल-राशि का है दूरतक मिलता न तट ।
है उसी के बीच हो जाता धरातल भी प्रगट ॥
यह कृपा ऐसी किया करता है कितनी ही सदा ।
लाभ, जिससे है उठाते सैकडों जन सर्व्वदा ॥ ८ ॥
जिस अँधेरे को नहीं करता कभी सूरज गमन ।
उस अँधेरे को सदा करता है वह पल में दमन ॥
भूल करके भी किसी का है जहाँ जाता न मन ।
वह विना आयास के करता वहाँ भी है गमन ॥
देवतों के ध्यान में भी जो नहीं आता कभी ।
उस खेलाडी के लिये हस्तामलक है वह सभी ॥ ९ ॥
जगमगाती गगन मडल की विविध तारावली ।
फूल, फल, सब रग के सब भाँति की सुन्दर कली ॥
सब तरह के पेड, उनकी पत्तियाँ साँचे ढली ।
अति अनूठे पर की चिडियाँ, अहनि शार्था पली ॥
आँख वाले के हृदय में है बिठा देती यही ।
इन अनूठे विश्व चित्रों का चितेरा है वही ॥१०॥
जिसने देखा है अरोरावोरिएलिस का समा ।
रग जिसकी आँख में है मेघमाला का जमा ॥
जो समझ ले व्यूह तारों का अधर में है थमा ।
जो लखे सब कुछ लिये है घूमती सिगरी छमा ॥

कितने ही सुन्दर बसे नगरों को देता है उजाड़ ।
भूल कर देता है ऊँचे ऊँचे कितने ही पहाड़ ॥
एक झटके में करोड़ों पेड़ लेता है उखाड़ ।
इस सकल ब्रह्मांड को पलभर में सकता है बिगाड़ ।
उसके भय से काँपते हैं देवते भी रात दिन ।
मोम हो जाता है वह भी,जो है पत्थर से कठिन ॥ ३ ॥
राज पा कर जिसको करते देखते थे हम विहार ।
माँगता फिरता है वह कल भीख, हाथों को पसार ॥
एक टुकड़े के लिये जो घूमता था द्वार द्वार ।
आज धरती है कँपाती उसके धोंसे की धुकार ।
नित्य ऐसी कितनी ही लीला किया करता है वह ।
रंक करता है, कभी सिर पर मुकुट धरता है वह ॥ ४ ॥
कितने ही उजड़े हुए घर को बसाता है वही ।
कितने ही बिगड़े हुए को भी बनाता है वही ॥
गिरने वाले को पकड़ कर के उठाता है वही ।
भूलने वाले को सीधा-पथ दिखाता है वही ॥
इस धरा पर है नहीं सुनता कोई जिसकी कही ।
उस दुखी की सब बिथा सुनता, समझता है वही ॥ ५ ॥
डाल सकता सीस पर जिसके पिता छाया नहीं ।
गोद माता की खुली जिसके लिये पाया नहीं ॥
है पसीजी देखकर जिसकी बिथा जाया नहीं ।
काम आती दीखती जिसके लिये काया नहीं ॥
बाँह ऐसे दीन की है प्यार से गहता वही ।
सब जगह सब काल उसके साथ है रहता वही ॥ ६ ॥
वह अँधेरी रात, जिसमें है घिरी काली घटा ।
वह बिकट जंगल, जहाँ पर शेर रहता है डटा ॥

वह महा मरघट, पिशाचों का, जहाँ है, जम घटा।
वह भयंकर ठाम जो है लोथ से बिल्कुल पटा॥
मत डरो ये कुछ किसी का कर कभी सकते नहीं।
क्या सकल संसार पाता है पड़ा सोता कहीं॥७॥
जिस महा मरु भूमि से कढ़ती सदा है लू लपट।
वारि की धारा मधुर रहती उसी के है निकट॥
जिस विशद जल राशि का है दूरतक मिलता न तट।
है उसी के बीच हो जाता धरातल भी प्रगट॥
वह कृपा ऐसी किया करता है कितनी ही सदा।
लाभ, जिससे हैं उठाते सैकड़ों जन सर्व्वदा॥८॥
जिस अँधेरे को नहीं करता कभी सूरज शमन।
उस अँधेरे को सदा करता है वह पल में दमन॥
भूल करके भी किसी का है जहाँ जाता न मन।
वह बिना आयास के करता वहाँ भी है गमन॥
देवतों के ध्यान में भी जो नहीं आता कभी।
उस खेलाड़ी के लिये हस्तामलक है वह सभी॥९॥
जगमगाती गगन मंडल की विविध तारावली।
फूल, फल, सब रंग के सब भाँति की सुन्दर कली॥
सब तरह के पेड़, उनकी पत्तियाँ साँचे ढली।
अति अनूठे पर की चिड़ियाँ, प्रकृति हाथों पली॥
आँख वाले के हृदय में हैं निठा देती यही।
इन अनूठे विश्व चित्रों का चितेरा है वही॥१०॥
जिसने देखा है अरोरावोरियलिस का समा।
रंग जिसकी आँख में है मेघमाला का जमा॥
जो समझ ले व्यूह तारा का अधर में है थमा।
जो लखे सब कुछ लिये है घूमती सिगरी छमा॥

कुछ लगाता है, वही करतूत का, उसकी पता।
भाव कुछ उसके गुनों का है, वही सकता बता ॥११॥
है कहीं लाखों करोड़ों कोस में, जल ही भरा।
है करोड़ों मील में फैली कहीं सूखी धरा ॥
है कहीं परवत जमाये दूर तक अपना परा।
देख पड़ता है कहीं मैदान कोसों तक हरा ॥
बह रहीं नदियाँ कहीं, हैं गिर रहे झरने कहीं।
किस जगह उसकी हमें महिमा दिखाती है नहीं ॥१२॥
जी लगाकर आँख की देखो क्रिया कौतुक भरी।
इस कलेजे की बनावट की लखो जादूगरी ॥
देख कर भेजा विचारो फिर विमल बाजीगरी।
इस तरह सब देह की सोचो सरस कारीगरी ॥
फिर बता दो यह हमें संसार के मानव सकल।
इस जगत में है किसी की तूलिका इतनी प्रबल ॥१३॥
जब जनमने का नहीं था नाम भी हमने लिया।
दो घड़ा तैयार दूधों का तभी उसने किया ॥
आपदा टालीं अनेकों, बुद्धि, बल, विद्या दिया।
की भलाई की न जानें और भी कितनी क्रिया ॥
तीन पन है बीतता तब भी तनिक चेते नहीं।
हम पतित ऐसे हैं उसका नाम तक लेते नहीं ॥१४॥
हे प्रभो! हे भेद तेरा वेद भी पाता नहीं।
शेष, शिव, सनकादि को भी अंत दिखलाता नहीं ॥
क्या अजब है जो हमें गाने सुयश आता नहीं।
व्योम तल पर चींटियों का जी कभी जाता नहीं ॥
मन मनाने के लिये, जो कुछ, ढिठाई की गई।
कीजिये उसको क्षमा, प्रभु बात तो अनुचित हुई ॥१५॥

वाइसराय-स्तुति ।

पद

ऐसे लाट भाग से आये ।
सबके हितू सभी के प्यारे, सब ही के मन भाये ।
बृटिश-जाति के रत्न अनूठे, वर जननी के जाये ।
नीति निपुण सुन्दर-गुन वाले, बुध-जन-बीच बराये ॥
परम रुचिर अँगरेज राज के, कलँगी सुजस लगाये ।
अपने सहज भाव से सबको प्यार सहित अपनाये ॥
बडी भली है उनकी लेडी, जिन्हें सभी पतिआये ।
जिनके गौरव को विलोक कर बड़े बड़े चकराये ॥
नाम हार्डिंग प्रभु वर का है, जिनसे बहु सुख पाये ।
जो अपने सँग लोक विमोहिनि बडी अनूठी लाये ॥
रीझ जन यह बरस गाँठ का दिन पा बजे बधाये ।
पति पत्नी जस परम मनोहर उमग सबों ने गाये ॥ १ ॥

खेमटा

घडी यह कैसी अनूठी आई ।
सब लोगों का बहुत जी उमगा, अजब छटा मुखड़े पर छाई ।
जो हैं सच्चे हितू सब जन के रग में जिनकी भरी है भलाई ॥
क्यों फूलों सा न सब विकसेंगे बरस-गाँठ उनहीं की पाई ।
भाग जगे, प्रभु हार्डिंग जैसे लाट मिले, सब के सुखदाई ॥
दिन दिन होती हरी जिन से है नीति लता, कब की कुम्हलाई ।
सारे पीछे सुगुन पुतरी सी ले उतरी सी सरग-लुनाई ॥
निपट निराली तिया उनकी है दृढता जिन में बहुत दिखलाई ।
सुख विलसें, पति पत्नी दोनों जग कीरत फैले मन भाई ॥
ऐसी बरस गाँठ कितनी पा, सब मिल गावें उमग बधाई ॥२॥

दादरा

चिरजीवें हमारे वाइसराय ।
नगर नगर कल कीरति फैले,
सुजस धुजा घर घर फहराय ॥
परस सुनीति पवन अति प्यारी
चाह कलित कलिका खिल जाय ।
मधुर-वचन-कल-सलिल-सहारे
सुमति-सुबेलि पुलक लहराय ॥
मुख-दिनमनि वर-जोति-विलोके
तम-भारत-अवनी टल जाय ।
सुख बहु निज प्यारी संग विलसैं,
तनिक न कमल वदन कुम्हिलाय ॥ २ ॥

शुभ-स्वागत ।

मन्दाक्रान्ता

लालित्यों का निलयवन, ऐ लेखिनी ! केलि शीला ।
पंक्ती पंक्ती अमित मधुरा उज्ज्वला, कोमला, हो ॥
लिक्खे जावें वरण जितने, वे सुधा सिक्त होवें ।
सद्रत्नों को प्रसव कर तू, आज मोती पिरो दे ॥ १ ॥
तू है दिव्या, परम कुशला, नित्य लीलामयी है ।
भावों को है ग्रथित करती, लोक की रंजिनी है ॥
मैं लिक्खूँगा परम-महिमा-वान की कीर्ति-माला ।
तू जिव्हा को मधुमय बना, मंजुता मूर्ति हो जा ॥ २ ॥
ऊँचा, न्यारा, प्रभु पद कहाँ सब्ब सद्गौरवों का ।
मेरे जैसा लघु जन कहाँ शून्य मर्म्मज्ञता से ॥

छूना चाहे उचक कर ज्यों एक बौना शशी को ।
वैसा ही है सुयश प्रभु के गान का यत्न मेरा ॥ ३ ॥
तो भी मैं हूँ सरुचि रसना खोलता सम्भ्रमों से ।
मेरे जी में यह सुखमयी चारु आशा बँधी है ॥
रत्नों द्वारा यजन जिसका है सम्मान होता ।
पूजा जाता नृप पद वहीं दीन के पुष्प से है ॥ ४ ॥
कैसे औ क्या कथन करके मैं प्रभू को सराहूँ ।
कोई भी है न दिन मणि को दीपकों से दिखाता ॥
सच्चे जी से, हृदय तल से, भक्ति से सिक्त हो के ।
मैं हूँ चावों सहित कहता 'स्वागत ते कृपाब्धे !' ॥५॥
शास्त्रों में है लिखित दिन हैं वे बड़े पुण्यवाले ।
आँखें देखें जिस दिन किसी भूप पादाम्बुजों को ॥
हर्ता, कर्ता, सुगुण मय है जो विधाता यहाँ का ।
क्यों होवेगी न फिर जनता पा उसे मोद-मग्ना ॥ ६ ॥
हो जाती है, परम-मलिना यामिनी, भाग्य वाली ।
जैसे पाके, कुमुद कुल के बन्धु की स्वच्छलायें ॥
दीना, हीना, परम पिछड़ी, नीरसा भू यहाँ की ।
वैसे छूके कमल पग को हो गई है कृतार्था ॥ ७ ॥
पानी देते न घन, सुधि तो ढाक की कौन लेता ।
क्यों कोई, हो सदय जुचती दूब को सींच जाता ॥
जो यों आते न प्रभुवर से, सर्व लोकोपकारी ।
यों हो जाता उदय पिछड़े प्रान्त का भाग्य कैसे ॥ ८ ॥
देखी जाती वदन पर है, सौम्यता वाञ्छनीया ।
कार्य्यों में है परम पटुता, चित्त में उच्चता है ॥
बातों में है रुचिर-मृदुता भाव में भव्यता है ।
पायी जाती सतत प्रभु में गूढ़ गंभीरता है ॥ ९ ॥

जैसे न्यारी, परम सरसा, वायु पा के वसती ।
हो जाती है विकच वन-भू, भृंग माला-प्रसन्ना ॥
वैसे ही छू समुद प्रभु के कान्त पादाबुजों को ।
यॉ की भू है मुदित, जनता है महोत्साह-मत्ता ॥१०॥

प्रताप श्री जार्ज-नृपाल का बढ़े ।
प्रशासिता, रूल बृटानिया रहे ॥
सुखी रहें कीर्ति लहें मनोहरा ।
समेत लेडी सर जेम्स मेस्टन ॥११॥



विद्या ।

[द्विपद]

दम चमकते हुए दिवाकर में ।
रस बरसते हुए निशाकर में ॥ १ ॥
जो अलौकिक प्रकाश वाली है ।
और सरसता में जो निराली है ॥ २ ॥
वह जगद्वन्दनीय विद्या है ।
अति अनूठा प्रभाव जिसका है ॥ ३ ॥
जोति सूरज जहाँ नहीं जाती ।
वह वहाँ भी है रंग दिखलाती ॥ ४ ॥
जो शशी को सरस नहीं कहते ।
इसके रस से है मोद वह लहते ॥ ५ ॥
यह सुधा है, अमर बनाती है ।
यह सुयश बेलि को उगाती है ॥ ६ ॥
हो गये व्यास, वाल्मीकि अमर ।
आज भी हैं सुकीर्ति भूतल पर ॥ ७ ॥
कामदा यह सुकल्प लतिका है ।
शान्ति-दात्री विचित्र वटिका है ॥ ८ ॥

कालिदासादि कामुकों का दल।
पा चुका है अनन्त इच्छित फल॥ ९॥
शान्ति इससे शुकादि ने पाई।
दीप्ति जिनकी दिगन्त है छाई॥१०॥
गग की यह पवित्र धारा है।
जिसने जाबालि को उधारा है॥११॥
नीच को ऊँच यह बनाती है।
काठ में भी सुफल फलाती है॥१२॥
था विदुर का कहाँ नहीं आदर।
कौन कहता उन्हें न नयनागर॥१३॥
सद्गुणों का प्रदीप्त पूषण था।
वह विबुध मडली विभूषण था॥१४॥
शक्ति हे अति अपूर्व विद्या की।
धूम सी है विचित्र क्षमता की॥१५॥
विश्व के बीच वस्तु है जितनी।
एक में भी न शक्ति है इतनी॥१६॥
स्वच्छ नीले अनन्त नभ तल का।
सूर्य्य, बुध, सोम, शुक्र, मगल का॥१७॥
इन चमकते हुए सितारों का।
पूँछ वाले अनन्त तारों का॥१८॥
भेद सब यह हमें बताती है।
मञ्जु दिल की कली खिलाती है॥१९॥
सैकड़ों कोस एक कोस बना।
रेल की है अजब हुई रचना॥२०॥
जो समाचार साल में आता।
है उसे पल में तार पहुँचाता॥२१॥

है रसायन की ऐसी चारु क्रिया।
सब धरा गर्भ जिसने छान लिया ॥२२॥
बन गयी हैं विचित्र नौकायें।
जो जलधि-गर्भ में चली जायें ॥२३॥
था असम्भव अनन्त में उड़ना।
युक्ति से दिव्य व्योमयान बना ॥२४॥
अब नये फूल फल हैं उपजाते।
हैं मृतक भी सजीव बन जाते ॥२५॥
देखने भालने लगे अंधे।
पुतलियाँ कर रहीं हैं सब धंधे ॥२६॥
बात बहरे समस्त सुनते हैं।
कपड़े बंदर भी अच्छे बुनते हैं ॥२७॥
बोलने चालने लगे गूँगे।
बन गये रंग रंग के मूँगे ॥२८॥
दूरबीनें, कलें, बनीं ऐसी।
हैं न देखी सुनी गयी जैसी ॥२९॥
किन्तु यह सब कमाल है किसका।
गुण मयी एक दिव्य विद्या का ॥३०॥
वेद-मंत्रों के जो हुए द्रष्टा।
हो गये उपनिषद के जो स्रष्टा ॥३१॥
आज भी उन महर्षि की वाणी।
है जगत बीच शुद्ध कल्याणी ॥३२॥
तर्क, गौतम, कणाद, जैमिनि का।
कृत्य पाण्डित्य पूर्ण पाणिनि का ॥३३॥
शंकराचार्य का स्वमत मंडन।
सूरि 'श्रीहर्ष' का प्रबल खंडन ॥३४॥

आज भी है अजस्र काम आता ।
है जगत में प्रकाश फैलाता ॥३५॥
यह सभी है विभूति विद्या की ।
है उसी की सुकीर्ति यह बाँकी ॥३६॥
माघ, भवभूति का सुधा-चर्पण ।
भारवी का अपूर्व संभाषण ॥३७॥
यह सदा ही श्रवण कराती है ।
दिव्य फल फलता दिखाती है ॥३८॥
है जननि के समान यह ढरती ।
है पिता के समान हित करती ॥३९॥
है तरणि केलि काज बन जाती ।
कीर्ति को है दिगन्त फैलाती ॥४०॥
यह निधन के लिये महा धन है ।
दुष्टजन के लिये सुशासन है ॥४१॥
है निबल के लिये अनूपम बल ।
है समुद्योग का समुत्तम फल ॥४२॥
है विमल तेज तेजहीनों को ।
रत्न की मंजु खानि, दीनों को ॥४३॥
है जरा ग्रस्त के लिये लकुटी ।
व्यग्र उद्विग्न काज शान्ति-कुटी ॥ ४४ ॥
यह विपत में विराम दायिनि है ।
क्लान्ति में मोद की विधायिनि है ॥ ४५ ॥
सहचरी है अनिन्द्य कर्म्मों में ।
है व्यवस्था विशुद्ध धर्म्मों में ॥ ४६ ॥
यह निरवलम्ब का सहारा है ।
तप्त हिय की सुवारि-धारा है ॥ ४७ ॥

कालिमा की कलिन्द नन्दिनि है । -
पाप के पुञ्ज की निकन्दिनि है ॥ ४८ ॥
है सुकोकिल समान कल वेनी । -
हस की भाँति मञ्जु गुन ग्रेनी ॥ ४९ ॥
मोर के पद लौं सुचित्रित है ।
यन्त्र की भाँति यह नियन्त्रित है ॥ ५० ॥
मल्लिका है प्रफुल्ल मोद-मई ।
पल्लवित वेलि है प्रमोद-लई ॥ ५१ ॥
है हृदय-तम विनाशिनी सुप्रभा ।
सद्विचारों की है विचित्र सभा ॥ ५२ ॥
है कला उक्ति युक्ति में ढाली ।
है तुला बुद्धि तौलने वाली ॥ ५३ ॥
स्वर्ग की सैर यह कराती है ।
मञ्जु अलकापुरी लखाती है ॥ ५४ ॥
है सजाती नवल जलद माला ।
है पिलाती पियूष का प्याला ॥ ५५ ॥
है सुनाती मधुर भ्रमर गुञ्जन ।
पक्षि कुल का अलाप कल कूजन ॥ ५६ ॥
है दिखाती हरी भरी डालीं ।
फूल फल से लदी सुछवि वालीं ॥ ५७ ॥
है जहाँ पर त्रिविध पवन बहती ।
है जहाँ मत्त कोकिला रहती ॥ ५८ ॥
जो सदा सौरभित सुपुष्पित है ।
जो सुक्रीडित व मञ्जु मुखरित है ॥ ५९ ॥
इस तरह के अनेक उपवन में ।
बाग में, कुञ्ज-पुञ्ज में, वन में ॥ ६० ॥

है हमें यह विहार करवाती ।
है छटा का रहस्य बतलाती ॥ ६१ ॥
स्वच्छ जलराशि मय सरोवर पर ।
हिम धवल-कर प्रदीप्त गिरि-वर पर ॥ ६२ ॥
यह हमें है सप्रेम ले जाती ।
है सुछवि का विकाश दिखलाती ॥ ६३ ॥
बुद्धि जाती जहाँ न मन जाता ।
जो सदा है अचिन्त्य कहलाता ॥ ६४ ॥
जो न मिलता हमें विचारों से ।
हैं न पाते जिसे सहारों से ॥ ६५ ॥
है उसे भी यही लखा देती ।
थाह उसका है कुछ यही लेती ॥ ६६ ॥
विश्व विद्या करी विशेष पला ।
है इसी से हुआ अशेष भला ॥ ६७ ॥
है अकथ औ असीम-गुण-माला ।
है उसे कौन भाखने वाला ॥ ६८ ॥
है यहाँ पर कहा गया जितना ।
वह अखिल के समीप है कितना ॥ ६९ ॥
कुछ नहीं है, महा अकिंचित-कर ।
जिस तरह बूँद और रत्नाकर ॥ ७० ॥
इसलिये 'नेति' 'नेति' कहते हैं ।
मुग्ध होते हैं मौन गहते हैं ॥ ७१ ॥

धर्म्मवीर ।

[षट्पद]

यह जगत जिसके सहारे से सदा फूले फले ।
ज्ञान का दीया निराली जोत से जिसके जले ॥
आँच में जिसके पिघल कर काँच हीरे सा ढले ।
जो बड़ा ही दिव्य है, तलछट नहीं जिसके तले ॥
हैं उसे कहते धरम, जिस से टिकी है यह धरा ।
तेज से जिसके चमकता है, गगन तारों भरा ॥ १ ॥
पालनेवाला धरम का है कहाता धर्म्मवीर ।
सब लकीरों में उसी की है बड़ी सुन्दर लकीर ॥
है सुरत्नों से भरी संसार में उसकी कुटीर ।
वह अलग करके दिखाता है जगत को छीर नीर ॥
है उसी से आज तक मरजाद की सीमा बची ।
सीढ़ियाँ सुख की उसीके हाथ की ही हैं रची ॥ २ ॥
एक-देशी वह जगत-पति को बनाता है नहीं ।
बात गढ़ कर एक का उसको बताता है नहीं ॥
रङ्ग अपने ढङ्ग का उस पर चढ़ाता है नहीं ।
युक्तियों के जाल में उसको फँसाता है नहीं ॥
भेद का उसके लगाता है वही सच्चा पता ।
ठीक उसका भाव देता है वही सब को बता ॥ ३ ॥
तेज सूरज में उसीका देख पड़ता है उसे ।
वह चमकता बादलों के बीच मिलता है उसे ॥
वह पवन में और पानी में झलकता है उसे ।
जगमगाता आग में भी वह निरखता है उसे ॥

राजती सब ओर है उसके लिये उसकी विभा ।
पत्थरों में भी उसे 'उसकी दिखाती है प्रभा ॥ ४ ॥
पेड में उसको दिखाते हैं हरे पत्ते लगे ।
वह समझता है सुयश के पत्र है उसके टॅगे ॥
फूल खिलते हैं, अनूठे रङ्ग में उसके रँगे ।
फल, उसे, रस में उसीके, देख पडते हैं पगे ॥
एक रजकण भी नहीं है आँख से उसके गिरा ।
राह का तिनका दिखाता है उसे, भेदों भरा ॥ ५ ॥
सोचता है वह, जो मिलते हैं उसे पर्वत खडे ।
हैं उसी की राह में सब ओर- ये पत्थर गडे ॥
जो दिखाते हैं उसे मैदान छोटे या बडे ।
तो उसे - मिलते वहाँ है ज्ञान के थीये पडे ।
वह समझता है पयोनिधि प्रेम से उसके गला ॥
जङ्गलों में भी उसे उसकी दिखाती है कला ॥ ६ ॥
है उसीकी खोज में नदियाँ चली जातीं कहीं ।
है तरावट भूलती उसकी कछारों को नहीं ॥
याद में उसकी सरोवर लोटता सा है वहीं ।
निर्झरों के बीच छीटें हैं उसी की उड रहीं ॥
वह समझता है उसी की धार सोतों में बही ।
झलमलाता सा दिखाता झील में भी है वही ॥ ७ ॥
भीर भौंरों की उसी की भर रही है भाँवरें ।
गान गुने उसका रसीले कण्ठ से पखी करें ॥
भनभना कर मक्खियाँ हरदम उसी का दम भरें ।
तितलियाँ हो हो निछावर ध्यान उसका ही धरें ॥
वह समझता है, न हैं, झनकार झींगुर की डगी ।
है सभी कीडे मकोडों को उसी की धुन लगी ॥ ८ ॥

है अछूती जोत उसकी ,मंदिरों में जग रही।
मसजिदों गिरजाघरों में भी दरसता है वही॥
बौद्ध मठ के बीच है दिखला रहा वह एक ही।
जेन मंदिर भी, छुटा उसकी छटा से है नहीं॥
ठीक इनमें दीठ जिसकी है नहीं सकती ठहर।
देख पड़ती है उसीकी आँख में उसको कसर॥ ६॥
सङ्ख उसके ही लिये देता जगत को है जगा।
बाँग भी सब को उसीकी ओर देती है लगा॥
गान इन ईसाइयों का ताल औ लय में पगा।
इस सुरत को है उसीकी ओर ले जाता भगा॥
जो बिना समझे किसी को भी बनाता है बुरा।
वह समझता है, वही सच पर चलाता है छुरा॥१०॥
हो तिलक तिरछा, तिकोना, गोल, आड़ा या खड़ा।
गौन हो, दस्तार हो, या बाल हो लाँबा बड़ा॥
जो बनावट का बुरा धब्बा न हो इन पर पड़ा।
तो सभी हैं ठीक, देते हैं दिखा पारस गड़ा॥
जो इन्हें लेकर झगड़ता या उड़ाता है हँसी।
जानता है, वह, समझ है जाल में उसकी फँसी॥११॥
गेरुआ कपड़ा पहनना, घूमना, दम-साधना।
राख मलना, गरमियों में आग जलती तापना॥
जङ्गलों में वास करना, तन न अपना ढाँकना।
गोंधना कंठी, गले में सेल्हियों का डालना॥
वह इन्हें मन जीत लेने की जुगुत है जानता।
जो न उतरा मैल तो सूखा ढचर है मानता॥१२॥
पतजिवा, रुद्राक्ष, तुलसी की बनी माला रहे।
या कोई तसबीह हो या पोर उँगली की गहे॥

या बहुत सी ककडी लेकर कोई गिनना चहे ।
या प्रभू का नाम अपनी जीभ से योहीं कहे ॥
लौ लगाने को बुरा इनमें नहीं है एक भी ।
आँख में उसकी नहीं तो, काठ मिट्टी हैं सभी ॥१३॥
ध्यान, पूजा, पाठ, व्रत, उपवास, देवाराधना ।
घूमना सब तीरथों मे, आसनों को साधना ॥
जोग करना, दीठ को निज नासिका पर बाँधना ।
सैकडों सयम नियम में इन्द्रियों को नाधना ॥
वह समझता है सभी हैं ज्ञान-माला की लडी ।
जो दिखावट की न भद्दी छींट हो इन पर पडी ॥१४॥
बौद्ध, त्रिपिटिक, बाइबिल, तौरेत, या होवे कुरान ।
जिन्दवस्ता, जैन की ग्रन्थावली, या हो पुरान ॥
वेद मत का ही बहुत कुछ है हुआ इनमें बखान ।
है बहा बहु धार से इन में उसीका दिव्य ज्ञान ॥
ठीक इनका भेद गुण लेकर वही है बूझता ।
है बुरी वह आँख औगुन ही जिसे है सूझता ॥१५॥
बुद्ध, जिन, ईसा मुहम्मद, और मूसा को भला ।
कौन कह सका है, दुनिये को इन्होंने है छला ॥
सोच लो जरदश्त भी है क्या कहीं उलटे चला ।
ये लगाकर आग दुनिये को नहीं सकते जला ॥
वह इसीसे है समझता वेद के पथ पर चढे ।
ये समय औ देश के अनुसार हैं आगे बढे ॥१६॥
बौद्ध, हिन्दू, जैन, ईसाई, मुसलमाँ, पारसी ।
जो बुराई से बचें, रक्खें न कुछ उसकी लसी ॥
धरम की मरजाद पालें हो सुरत हरि में बसी ।
तो भले हैं ये सभी, दोनों जगह होंगे जसी ॥

वह उसीको है बुरा कहता किसीको जो छेले।
है धरम कोई न खोटा ठीक जो उसपर चले ॥१७॥
बौद्ध मत, हिन्दू धरम, इसलाम या ईसाइयत।
हैं, जगत के बीच जितने जैन आदिक और मत॥
वह बताता है सभों की एक ही है असलियत।
है स्वमत में निज विचारों के सबर हर एक रत॥
ठोर है वह एक ही, यह राह कितनी हैं गई।
दूध इनका एक है, केवल पियाले हैं कई ॥१८॥
वह क्रिया से है भली जी की सफाई जानता।
पडिताई से भलाई को बडी है मानता।
वह सचाई को पगडों में नहीं है सानता॥
वह धरम के रास्ते को ठीक है पहचानता।
ज्ञान से जग बीच रहकर हाथ वह धोता नहीं॥
आड में परलोक की वह लोक को खोता नहीं ॥१९॥
तग करना, जी दुखाना, छेडना भाता नहीं।
वह बनाता है, कभी सुलझे को उलझाता नहीं॥
देखकर दुख दूसरों का चैन वह पाता नहीं।
एक छोटे कीट से भी तोडता नाता नहीं॥
लोक सेवा से सफल होकर सदा बढता है वह।
धूल बनकर पॉव की जन-सीस पर चढता है वह ॥२०॥
धन, विभव, पद, मान, उसको और देते हैं झुका।
प्रेम बदले के लिये उसका नहीं रहता रुका॥
वह अजब जल है उसे जाता है जो जग में फुका।
वैरियों से वह कभी बदला नहीं सकता चुका॥
प्यार से है बाघ से विकराल को लेता मना।
वह भयकर ठौर को देता तपोवन है बना ॥२१॥

हैं कहीं काले बसे, गोरे दिखाते हैं कहीं।
लाल, पीले सेत, भूरे, साँवले भी हैं यहीं॥
पीढ़ियाँ इनकी कभी नीची, कभी ऊँची रहीं।
रँग बदलने से बदलती दीठ है उसकी नहीं॥
भेद वह अपने पराये का नहीं रखता कभी।
सब जगत है देस उसका जाति है मानव सभी॥२२॥
वह समझता है—सभी रज बीज से ही है जना।
मांस का ही है कलेजा दूसरों का भी बना॥
आन जाने पर न किसकी आँख से आँसू छना।
दूसरे भी चाहते हैं मान का मुट्ठी चना॥
खौलना जिसका किसीसे भी नहीं जाता सहा।
है रगों में दूसरों की भी वही लोहू बहा॥२३॥
वह तनक रोना, कलपना और का सहता नहीं।
हाथ धोकर और के पीछे पड़ा रहता नहीं॥
बात लगती वह किसीको एक भी कहता नहीं।
चोट पहुँचाना किसीको वह कभी चहता नहीं॥
जानता है दीन दुखियों के दरद को भी वही।
बेकसों की आह उससे है नहीं जाती सही॥२४॥
यह चुडैलें चाह की उसको नहीं सकती सता।
प्यार वह निज वासनाओं से नहीं सकता जता॥
मोह की जी में नहीं उसके उलहती है लता।
है कलेजे में न कीने का कहीं मिलता पता॥
रोस की, जी में कभी उठती नहीं उसके, लपट।
छल नहीं करता किसीसे, वह नहीं करता कपट॥२५॥
गालियाँ भाती नहीं, ताने नहीं जाते सहे।
आग लग जाती है कची बात जो कोई कहे॥

देखकर नीचा किसीकी आँख कब ऊँची रहे।
टोकरें खाकर भला किसको नहीं आँसू बहे॥
वह समझता हे न इतना घाव करती है छुरी।
टेस होती हे बडी ही इस कलेजे की बुरी॥२६॥
देख करके तोप को जाता कलेजा हे निकल।
यह छुरी बदूक लखकर जी नहीं सकता सम्हल॥
बरछियाँ, तलवार, भाले हैं बना देते विकल।
गोलियाँ, बारूद, छुरें, आँख करते हें सजल॥
उस समय तो और भी उसका तडपता है जिगर।
जब समझता हे कि इनमें हे भरी जी की कसर॥२७॥
क्यों बहाने को लहू हथियार सब जाते गढे।
दूसरों पर दूसरे फिर किस लिये जाते चढ़े॥
किस लिये रणपोत बनते और वे जाते मढे।
नासमझ का काम करते किस लिये लिक्खे पढे॥
जो उसीकी भाँति उठती प्यार की सब की भुजा।
तो दिखाती शान्ति की सब ओर फहराती धुजा॥२८॥
पेट भरने के लिये कटता किसीका क्यों गला।
एक भाई के लिये क्यों दूसरा होता बला॥
इस जगत में किस लिये जाता कभी कोई छला।
यह बसा घर क्यों कलह की आग में होता जला॥
ठीक सुन्दर नीति उसकी जो सदा होती चली।
तो कटी डालें दिखातीं आज दिन फूली फली॥२९॥
है विभव किस काम का वह हो लहू जिसमें लगा।
आग उस धन में लगे जिसमें हुई कुछ भी दगा॥
वह गरब गिर जाय जिसका है सताना ही सगा।
धूल में वह पड ,मिले जो है कलकों से रँगा॥

वह विवस होकर सदा दुख से सुनाता है यही।
वह धरा धँस जाय जिसपर है कभी लोथें ढही ॥३०॥
यह भला है, यह बुरा है, वह समझता है सभी।
भूसियों में, छोड कर चावल नहीं फँसता कभी॥
जब ठिकाने है पहुँचता मोद पाता है तभी।
बात थोथी है नहीं मुँह से निकलती एक भी॥
है जहाँ पर चूक उसकी आँख पडती है वहीं।
जड पकडता है उलझता पत्तियों में वह नहीं ॥३१॥
आदमी का पैंठना, बढ़ना, बहकना, बोलना।
रूठना, हँसना, मचलना, मुँह न अपना खोलना॥
सग बन जाना, कभी इन पत्तियों सा डोलना।
वह समझता है तराजू पर उसे है तोलना॥
है उसीने ही पढी जी की लिखावट को सही।
गुत्थियाँ उसकी सदा है ठीक सुलझाता वही ॥३२॥
देखता अंधा नहीं, उजले न होते हैं रँगे।
दौडता लँगडा नहीं, सोये नहीं होते जगे॥
क्यों न वह फिर रास्ते पर ठीक चलने से डगे।
है बहुत से रोग जिसके एक ही दिल को लगे॥
देखकर बिगडा किसीको वह नहीं करता गिला।
काम को कितनी दवायें है उसे देता पिला ॥३३॥
देखकर गिरते उठाता है, बिगड जाता नहीं।
वह छुडाता है फँसे को, और उलझाता नहीं॥
राह भूले को दिखा देता है भरमाता नहीं।
है बिगडते को बनाता, आँख दिखलाता नहीं॥
सर अँधेरे में भला किसका न टकराया किया।
वह अँधेरा दूर करता है जलाता है दिया ॥३४॥

जीव जितने हैं जगत में, हैं उसे प्यारे बड़े ।
दुख उसे होता है जो तिनका कहीं उनको गड़े ॥
एक चींटी भी कहीं जो पाँव के नीचे पड़े ।
तो अचानक देह के होते हैं सब रोयें खड़े ।
हैं छुटे उसकी दया से ये हरे पत्ते नहीं ।
तोड़ते इनको उसे है पीर सी होती कहीं ॥३५॥
काँप उठें सब लोक पत्ते की तरह धरती हिले ।
राज, धन जाता रहे, पद, मान, मिट्टी में मिले ॥
जीभ काटी जाय, फोड़ी जाँय आँखें मुँह सिले ।
सैकड़ों टुकड़े बदन हो, पर्त चमड़े की छिले ॥
छोड़ सकता उस समय भी वह नहीं अपना धरम ।
जब रहे हर एक रोयें नोचते चिमटे गरम ॥३६॥
धर्मवीरों की चले, सब लोग हो जावें भले ।
भाइयों से भाइयों का जी न भूले भी जले ॥
चन्द्रमा निकले, धरम का, पाप का बादल टले ।
हे प्रभो संसार का हर एक घर फूले फले ॥
इस धरा पर प्यार की प्यारी सुधा सब दिन बहे ।
शान्ति की सब ओर सुन्दर चाँदनी छिटकी रहे ॥३७॥

कर्मवीर ।

[षट्पद ।]

देखकर जो विघ्न बाधाओं को घबराते नहीं
भाग पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं ॥
काम कितना ही कठिन हो पर जो उकताते नहीं ।
भीड़ पड़ने पर भी जो चंचल हैं दिखलाते नहीं ॥

होते हैं यक आन में उनके बुरे दिन भी भले ।
सब जगह सब काल में रहते हैं वे फूले फले ॥ १ ॥
आज जो करना है कर देते हैं उसको आज ही ।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही ॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही ।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आप ही॥
भूल कर वे दूसरे का मुँह कभी तकते नहीं।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ॥ २ ॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं ।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं ।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
बात है वह कौन जो होनी नहीं उनके किये ।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ॥ ३ ॥
गगन को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर ।
वे घने जगल जहाँ रहता है तम आठो पहर ॥
गर्जते जल राशि की उठती हुई ऊंची लहर ।
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लवर ॥
ये कँपा सकतीं कभी जिसके कलेजे को नहीं ।
भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥ ४ ॥
चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना ।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना ॥
हँसते हँसते जो चबा लेते हैं लोहे का चना ।
"है कठिन कुछ भी नहीं" जिनके है जी में यह ठना ॥
कोस कितने ही चलें पर वे कभी थकते नहीं ।
कौन सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं ॥ ५ ॥

ठीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली।
रेग को करके दिखा देते हैं वे सुन्दर खली॥
वे बबूलों में लगा देते हैं चंपे की कली।
काक को भी वे सिखा देते हैं कोकिल काकली॥
ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वे कमल।
वे लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल फल॥६॥
काम को आरम्भ करके यों नहीं जो छोडते।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोडते॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहिं तोडते।
सपदा मन से करोडों की नहीं जो जोडते॥
बन गया हीरा उन्हींके हाथ से है कारबन।
कॉच को करके दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन॥७॥
पर्वतों को काटकर सडकें बना देते हैं वे।
सेकडों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वे॥
अगम जल-निधि गर्भ में बेडा चला देते हैं वे।
जंगलों में भी महा-मंगल रचा देते हैं वे॥
भेद नभ तल का उन्होंने है बहुत बतला दिया।
है उन्होंने ही निकाली तार की सारी क्रिया॥८॥
कार्य्य थल को वे कभी नहिं पूछते "वह है कहाँ"।
कर दिखाते हैं असंभव को वही संभव यहाँ॥
उलझनें आकर उन्हें पडती हैं जितनी ही जहाँ।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहाँ॥
डाल देते हैं विरोधी सैकडों ही अडचलें।
वे जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें॥९॥
जो रुकावट डाल कर होवे कोई पर्वत खडा।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वे उडा॥

बीच में पडकर जलधि जो काम देवे गडबडा।
तो बना देंगे उसे वे क्षुद्र पानी का घडा॥
बन खँगालेंगे करेंगे व्योम में बाजीगरी।
कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी॥१०॥
सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले।
बुद्धि, विद्या, धन, विभव के हैं जहाँ डेरे डले॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी।
देश की औ जाति की होगी भलाई भी तभी॥११॥

जीवनमुक्त।

[अरिल।]

किसे नहीं ललना ललामता मोहती।
विफल नही होता उसका टोना कहीं॥
किसे नहीं उसके विशाल दृग वेधते।
किसे कुसुम शायक कंपित करता नहीं॥ १॥
निज लपटों से करके दग्ध विपुल हृदय।
कलह, वैर, कुवचन अंगारक प्रसवती॥
करके भस्मीभूत विचार, विवेक को।
किसके उर में क्रोध आग नहिं दहकती॥ २॥
अनुचित उचित विचार-विहीन, उपद्रवी।
प्रतिहिंसा प्रिय, हठी निकेतन अज्ञता॥
असहन शील, कठोर, दाम्भिक, मद-धी।
किसे नहीं करती प्रमत्त, मद मत्तता॥ ३॥

कहीं कान्त स्वर ग्राम रूप में है रमा ।
    कहीं सरस रस परिमल बन कर सोहना ॥
सुत वितादि ममता स्वरूप में है कहीं ।
    मधुर मूर्ति से मोह किसे नहिं मोहता ॥ ४ ॥
तीन लोक का राज तथा सारा विभव ।
    पा करके भी तृप्ति नहीं होती जिसे ॥
रुधिरपात पर पीडन का जो हेतु है ।
    भला लोभ विचलित करता है नहीं किसे ॥ ५ ॥
चाहे द्रोह, प्रमाद, असूया आदि हो ।
    चाहे हो मत्सर, चाहे हो पिशुनता ॥
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ जैसे अपर ।
    दोप हे न, ये सकल दोप के हैं पिता ॥ ६ ॥
अनुपम साधन तथा आत्मबल अतुल से ।
    जिसका जीवन इन दोपों से मुक्त है ॥
पूत चरित लोकोत्तर गुण गरिमा-वलित ।
    वही इस अवनि तल पर जीवनमुक्त है ॥ ७ ॥
क्या सकामता उसमें होती है नहीं ?
    होती है, पर वह होती है सुगन्धि मय ।
बन जाता है परम फलद औ पूत तम ।
    काम निश्चित छू अति पावन उसका हृदय ॥ ८ ॥
नहिं विलासिता हेतु बनी उसके लिये ।
    किसी काल में कामिनि कुल-कमनीयता ॥
वरन उसे सब काल दिखा उसमें रही ।
    उस महान महिमा मय औ महनीयता ॥ ९ ॥
उस पावक सा पूत कौन उज्ज्वल रहे ।
    जो कचन को बना रहा है निर्मल ॥

या होता है वह उस भानु प्रभात सा।
जो समुदित हो देता है तम-तोम दल ॥ १० ॥
उस आतप सा भी कह सकते हैं उसे।
जिसके पीछे सुखद सलिल है बरसता ॥
वह सुतप्त जल भी उसका उपमान है।
तन जिससे पाता हे अनुपम निरुजता ॥ ११ ॥
यह वह शासन है जिससे सुधरे कुधी।
यह वह नियमन है जिसमें है हित निहित ॥
वह प्रयोग है मुक्त जनों का कोप यह।
जिससे अविहित रत पाता है पथ विहित ॥ १२ ॥
आत्म त्याग का अति पुनीत मद पान कर।
वह रहता है सदा विमुग्ध प्रमत्त सा ॥
होती है इसलिये भूत हित में रँगी।
सफल भावनायें उसकी मद-सम्भवा ॥ १३ ॥
पर-दुख कातरता पर वरता वद्यता।
अह मन्यता को मानवता पगों पर ॥
सदा निछावर करता है वह मुग्ध हो।
पर हित प्रियता पर गौरव गरिमा अपर ॥ १४ ॥
कर विलोप सा घन नभ तारक-पुंज का।
दिन नायक सा नहिं होता उसका उदय ॥
समुदित होता है वह कुमुदिनि कान्त सा।
सप्रभ, अविकलित, रंजित, रत्न तारक निचय ॥ १५ ॥
होता है उर मोह महत्ताओं भरा।
होतीं हैं भ्रम मयी न उसकी पूर्तियाँ ॥
मधुमयता, ममता, विमुग्धता में उसे।
विश्व प्रेम की मिलती हैं शुचि मूर्तियाँ ॥ १६ ॥

सुन्दर स्वर लहरी उसकी चित वृत्ति को।
ले जाती है खींच अलौकिक लोक में॥
बहती है अति पूत प्रेम धारा जहाँ।
भक्ति-सुधा सँग दिव्य ज्ञान आलोक में॥ १६॥
भाव 'रसो वै स' का उसमें है भरा।
परिमल करता है मानस को परिमलित॥
पाठ सिखा देता है समता का उसे।
मनन शीलता सुत-वितादि ममता-जनित॥ १८॥
कभी लोक-सेवा-लोलुपता-रूप में।
कभी उच्चतम-प्रेम ललक की मूर्ति बन॥
मुक्त जनों का लोभ विलसता है कभी।
पा भावुकता ललित लालसा पूत तन॥ १९॥
रज-समान गिन तीन लोक के राज को।
लोक चित्त रंजन हित लालायित रहा॥
बना रहा वह विहित लाभ का लालची।
सदा विभव तज भव हित धारा में बहा॥ २०॥
रक्त पात नियमन मदान्धता दमन का।
सत्य, न्याय, को समुचित मान प्रदान का॥
उसके जी से लोभ न जाता है कभी।
जीव दया, सच्ची स्वतंत्रता दान का॥ २१॥



देव-बुद्धि ।

कर लिये करवाल अकुरिठता ।
कनक कश्यपने जब यों कहा ॥
यह प्रभू तव क्या परिव्याप्त है ।
इस महा जड प्रस्तर स्तम्भ में ॥ १ ॥

तब अकम्पित औ दृढ कण्ठ से ।
यह कहा प्रहलाद प्रबुद्धने ॥
वह प्रभू जब व्यापक विश्व है ।
तब नहीं वह है किस वस्तु में ॥ २ ॥

पत्ते पत्ते प्रगट करते कीर्ति लोकोत्तरा है ।
कीटों में भी प्रथित महिमा की प्रभा व्यञ्जिता है ॥
कैसे होगी न प्रभु वर की स्तम्भ में दिव्य सत्ता ।
जो धूली के सकल कण में है कला दृष्टि आती ॥ ३

कोई भी है न इस जग में वस्तु ऐसी कहीं भी ।
पाया जाता न कुछ जिसमें अंश आकाश का हो ॥
मैं पाता हूँ वियत सँगवाँ वायु औ तेज को भी ।
कैसे होगी न फिर उसमें सूक्ष्म सत्ता प्रभू की ॥ ४

ये बातें ऐ सहृदय जनो ! हैं यही तो बताती ।
जो है, अज्ञा, तिमिर-वलिता है वही दानवी धी ॥
ऐसे ही जो परम शुचि है दिव्य ज्योतिर्मयी है ।
सद्भावों की प्रसव-भुवि है, देव बुद्धी वही है ॥ ५ ॥

कुलीनता ।

[वंशस्थ ।]

विवेक, विद्या, सुविचार, सत्यता ।
क्षमा, दया, सज्जनता, उदारता ॥
क्रिया, सदाचार, परोपकारिता ।
सदा समाधार कुलीनता रही ॥ १ ॥
परन्तु है आज विचित्र ही दशा ।
विडम्बिता है नित ही कुलीनता ॥
सप्रेम है अर्पित हो रही सुता ।
उसे यता वशगता कुलागता ॥ २ ॥
किसी बड़े पूज्य महान व्यक्ति का ।
सुयश-सम्मान प्रदान योग्य है ॥
परन्तु तद्वशज अक्ष अग्रणी ।
कदापि कन्यार्पण का न पात्र है ॥ ३ ॥
गुणों बिना केवल वश, विश्व में ।
कदापि सम्मानित हो सका नहीं ॥
इसे सदा है करती प्रमाणिता ।
कथावली पकज कज्जलादि की ॥ ४ ॥
अवश्य है अध परम्परा किये ।
हमें विवेकादि विहीन मद्-धी ॥
भला नहीं तो हम क्यों विलोकते ।
स्वलोचनों से कुदशा स्व कन्यका ॥ ५ ॥
न मूढ ही है अविवेक में फँसे ।
यही दशा है मति मान वृन्द की ।

समर्थ हैं जो तम के विनाश में।
स्वयं वही हैं तम-पुंज में पड़े॥ ६॥
पढ़ा, लिखा, अर्जन ज्ञान का किया।
सुधी बने, जीत सभा अनेक ली॥
परन्तु पाई न विवेक बुद्धि तो।
वृथा हुई सर्व क्रिया अनुष्ठिता॥ ७॥
उठा दृगों को कह दो मनीषियो।
बनी रहेगी कब लों समादृता॥
कुलीनता के मिस निन्दिता प्रथा।
कुलीन के व्याज विमूढ़ मण्डली॥ ८॥
न काम आई प्रतिभा गरीयसी।
न बुद्धि विद्या विबुधों भरी सभा॥
निपातिता जो न हुई प्रयत्न से।
प्रवर्द्धमाना कुप्रथा पिशाचिनी॥ ९॥
स्वजाति सेवा व्रत है विडम्बना।
समस्त व्याख्यान प्रलाप मात्र है॥
विवेक शीला वर बुद्धि आप की।
विलुप्त होवे यदि कार्य्य काल में॥ १०॥
समाज के सम्मुख औ सभादि में।
जिसे बतावें अति कुत्सिता क्रिया॥
करें उसीको यदि कार्य्य आ पड़े।
न अन्य तो है कुप्रवृत्ति ईदृशी॥ ११॥
विलोक ली मुग्ध करी विदग्धता।
मनस्विता वाक्-पटुता सयत्नता॥
शरीर की है धमनी सरक्त तो।
हमें दिखादो निज कार्य्य वीरता॥ १२॥

घिविध यगीचे अनेक उपवन ।
विकाश से हैं महा विकाशित ॥
मनों धरा पर अधीश उडुगन ।
अनन्त तज कर हुआ प्रकाशित ॥ १८ ॥
न एक सित पुष्प ही मनोहर ।
सुसाम्य यश ओप में घढा था ॥
हरे असित नील पुष्प चय पर ।
प्रकाश का रग ही चढ़ा था ॥ १६ ॥
समस्त क्यारी फलित हुई थीं ।
प्रभा वलित थी अखिल प्रणाली ॥
सुधा सरस कुज में चुई थी ।
दमक रही थी मलीन डाली ॥ २० ॥
फटी छॅटी बेलि यूटियों पर ।
छॅटी हुई ज्योति टिक रही थी ॥
हरी भरी घॉस ग्रॅटियां पर ।
किरण अछूती छिटिक रही थी ॥ २१ ॥
खिले हुए फूल पर न केवल ।
कमाल थी कौमुदी लखाती ॥
मुँदे हुए थे अनेक उत्पल ।
जिन्हें कला थी मुकुट पिन्हाती ॥ २२ ॥
समस्त समतल विशाल प्रान्तर ।
प्रकाशमय ये बिछी रई थी ।
सु अकुरित खेत खेत होकर ।
प्रभा परम पल्लवित हुई थी ॥ २३ ॥
प्रवेश करके विशद नगर म ।
... सो रहा था ॥

सुवीचियों वीच स्वच्छ उज्ज्वल ।
प्रकाश का विम्ब था ढलकता ॥ ११ ॥
हरी भरी भूमि का सरोवर ।
सुभव्य था चारुता वडी थी ॥
रजत बनाई विशाल चादर ।
सुशष्प के मध्य में पडी थी ॥ १२ ॥
अनेक छोटे वडे जलाशय ।
जहॉ तहॉ थे अजव दमकते ॥
प्रदीप्त नभ में नक्षत्र कतिपय ।
सतेज हैं जिस तरह चमकते ॥ १३ ॥
अनेक सितकर प्रदीप्त निर्झर ।
असंख्य मोती उछालते थे ॥
निसार करके कवीक पति पर ।
उमग अपनी निकालते थे ॥ १४ ॥
तमोमयी शैल -कन्दरायें ।
महा तिमिर-वान झाडियॉ सव ॥
कहो न क्यों आज जगमगायें ।
स्वय तमा है प्रभा-मयी जव ॥ १५ ॥
वना हुआ था विशाल जगल ।
प्रकाश के पुंज का अखाडा ।
मयक कर ने जहॉ सदल वल ।
प्रचड तम तोम को पछाडा ॥ १६ ॥
प्रसून पर काश के विभावश ।
विचित्र है चारुता लखाती ॥
अमल धवल केश राशि पावस ।
रची गई ज्योति की जनाती ॥ १७ ॥

विविध बगीचे अनेक उपवन।
विकाश से हैं महा विकाशित॥
मनों धरा पर अधीश उडुगन।
अनन्त तज कर हुआ प्रकाशित॥ १८॥
न वक्र सित पुष्प ही मनोहर।
सुसाम्य-वश ओप में बढ़ा था॥
हरे असित नील पुष्प चय पर।
प्रकाश का रंग ही चढ़ा था॥ १९॥
समस्त क्यारी कलित हुई थी।
प्रभा वलित थी अखिल प्रणाली॥
सुधा सरस कुंज में चुई थी।
दमक रही थी मलीन डाली॥ २०॥
कटी छँटी बेलि बूटियों पर।
छँटी हुई ज्योति टिक रही थी॥
हरी भरी घॉस चूँटियों पर।
किरण अछूती छिटिक रही थी॥ २१॥
खिले हुए फूल पर न केवल।
कमाल थी कौमुदी लखाती॥
मुँदे हुए थे अनेक उत्पल।
जिन्हें कला थी मुकुट पिन्हाती॥ २२॥
समस्त समतल विशाल प्रान्तर।
प्रकाशमय थे बिछी रुई थी।
सु अंकुरित खेत खेत होकर।
प्रभा परम पल्लवित हुई थी॥ २३॥
प्रवेश करके विशद नगर में।
प्रकाश तम राशि खो रहा था॥

सुवीचियों बीच स्वच्छ उज्ज्वल ।
प्रकाश का विम्ब था ढलकता ॥ ११ ॥
हरी भरी भूमि का सरोवर ।
सुभव्य था चारुता बडी थी ॥
रजत बनाई विशाल चादर ।
सुशष्प के मध्य में पडी थी ॥ १२ ॥
अनेक छोटे बडे जलाशय ।
जहाँ तहाँ ये अजव दमकते ॥
प्रदीप्त नभ में नक्षत्र कतिपय ।
सतेज हैं जिस तरह चमकते ॥ १३ ॥
अनेक सितकर प्रदीप्त निर्झर ।
असख्य मोती उछालते थे ॥
निसार करके कवीक पति पर ।
उमग अपनी निकालते थे ॥ १४ ॥
तमोमयी शैल -कन्दरायें ।
महा तिमिर-वान झाडियाँ सब ॥
कहो न क्यों आज जगमगायें ।
स्वय तमा है प्रभा मयी जब ॥ १५ ॥
बना हुआ था विशाल जगल ।
प्रकाश के पुज का अखाडा ।
मयक-कर ने जहाँ सदल बल ।
प्रचड तम- तोम को पछाडा ॥ १६ ॥
प्रसून पर काश के विभावश ।
विचित्र है चारुता लखाती ॥
अमल धवल केश राशि पावस ।
रची गई ज्योति की जनाती ॥ १७ ॥

विविध वगीचे अनेक उपवन।
विकाश से हैं महा विकाशित॥
मनों धरा पर अधीश उडुगन।
अनन्त तज कर हुआ प्रकाशित॥ १८॥
न एक सित पुष्प ही मनोहर।
सुसाम्य वश ओप में पढ़ा था॥
हरे असित नील पुष्प-चय पर।
प्रकाश का रंग ही चढ़ा था॥ १९॥
समस्त क्यारी कलित हुई थी।
प्रभा वलित थी अखिल प्रणाली॥
सुधा सरस कुंज में चुई थी।
दमक रही थी मलीन डाली॥ २०॥
कटी छँटी वेलि बूटियों पर।
छँटी हुई ज्योति टिक रही थी॥
हरी भरी बाँस खूँटियों पर।
किरण अछूती छिटिक रही थी॥ २१॥
खिले हुए फूल पर न केवल।
कमाल थी कौमुदी लमाती॥
मुँदे हुए थे अनेक उत्पल।
जिन्हें कला थी मुकुट पिन्हाती॥ २२॥
समस्त समतल विशाल प्रान्तर।
प्रकाशमय थे विछी रुई थी।
सु अंकुरित खेत खेत होकर।
प्रभा परम पल्लवित हुई थी॥ २३॥
प्रवेश करके विशद नगर में।
प्रकाश तम राशि ...

डगर डगर औ बगर बगर में।
जगर मगर आज हो रहा था ॥ २४ ॥
प्रशस्त प्राकार मन्दिरों में।
फटिक शिला शुभ्र लग गई थी।
समग्र आँगन घरों दरों में।
नवल धवल जोति जग गई थी ॥ २५ ॥
अटारियाँ खिड़कियाँ मनोहर।
प्रकाश की कोठियाँ बनी थीं ॥
सुभग मुँडेरों सु कँगनियों पर।
लगी हुई वज्र की कनी थीं ॥ २६ ॥
हुए छतों पर विचित्र टोने।
समस्त छाजन ज्वलित हुई थी ॥
कला फिरी थी हरेक कोने।
झलक रही भूमि की सुई थी ॥ २७ ॥
सकल गली औ समस्त कूँचे।
चमक दमक चारु थे लसाते ॥
चऊतरे चौहटे समूचे।
अजीव ये आज जगमगाते ॥ २८ ॥
बना हुआ ठाट हाट का था।
रजतमयी सब दुकान ही थी ॥
सुचमकियों से वसन टँका था।
मिठाइयों पर सुधा बही थी ॥ २९ ॥
भया प्रभावान भव्य भाजन।
हुआ विभूषण सुरत्न-मण्डित ॥
कलावतू बादला बना सन।
अखिल उपस्कर हुए अलंकृत ॥ ३० ॥

गिलम गलीचे मलिन दरी भी।
चमक दमक चारुता मयी थी॥
पडी सड़क में कुकरी भी।
प्रभावती पोत बन गई थी॥ ३१॥
सुधा धवल भवन ही न केवल।
हुआ प्रभा पुञ्ज से सुशोभन॥
बुरा निकेतन महा मलिन थल।
सुदर्पणों सा घना सुदर्शन॥ ३२॥
रचा हुआ घास का कुवर भी।
प्रदीप्त था, ज्योति भर रही थी॥
पडी झोपड़ी समस्त घर भी।
कला करामात कर रही थी॥ ३३॥
कलित किरण थी प्रतीति जोरी।
प्रकाश में तेज सन गया था॥
जकी चकी थी खड़ी चकोरी।
कवीकपनि भानु बन गया था॥ ३४॥
सुचाँदनी की चटक निकाई।
पयोधि का कान काटती थी॥
जिसे बड़े चाव से बिलाई।
विचार कर दूध चाटती थी॥ ३५॥
निशा हुई थी महा समुज्ज्वल।
समस्त नभ रैन था लगाता॥
कभी अचानक विहङ्ग का दल।
प्रभात का राग था सुनाता॥ ३६॥
दिगन्त में भूमि तल गगन पर।
त्रिलोक की श्वेतता थमी थी॥

किधौं कलित-कीर्त्ति-रूप धरकर ।
त्रिलोक-पति की प्रगट लसी थी ॥ ३७ ॥
महा सिताभा असीम नभ-तल ।
प्रदीप्त करके हुई सुप्लावित ।
निमग्न करके समग्र भूतल ।
किधौं पयो राशि है प्रवाहित ॥ ३८ ॥
अमल सतोगुन विशुद्ध उज्वल ।
स्वरूप धर कर प्रगट लखाया ॥
किधौं प्रभावान सित कमल दल ।
वसुन्धरा पर गया विछाया ॥ ३९ ॥
कलितकला जिस रुचिर नगरपर ।
सुकान्ति का है प्रसार करती ॥
उसी नगर में महा मनोहर ।
विभावती एक है सुधरती ॥ ४० ॥
रचे गुणी जन इसी धरा पर ।
अनेक प्रासाद हैं चमकते ॥
सदैव जिनके कलस रुचिर तर ।
दिनेश की भाँति हैं दमकते ॥ ४१ ॥
इन्हीं सुप्रासाद-पंक्ति भीतर ।
अपूर्व है एक हर्म्य शोभित ॥
विचित्र जिसकी बनावटों पर ।
न दृष्टि किसकी हुई प्रलोभित ॥ ४२ ॥
इसी विशद हर्म्य म मनोहर ।
प्रकोष्ट है एक अति सुसज्जित ॥
जिसे कलित चन्द्रिका कलाधर ।
*अजस्र थी कर रही सुरंजित ॥ ४२ ॥

शनै शनै एक जन उसी पर।
प्रशान्त गति से टहल रहा था॥
प्रफुल्ल मुख कान्ति मान हो कर।
प्रसाद की ओर ढल रहा था॥ ४४॥
विशाल भुज वक्ष यह युवा जन।
मयक की माधुरी मनोहर॥
विलोककर था महा मुदित मन।
अपूर्व-उच्छ्वास-पूर्ण-अन्तर॥ ४५॥
प्रकोष्ठ की चारु कार्य्य वाली।
खुली रुचिर सित शिला रची छत॥
सकल-उपस्कर-सुरत्न-शाली।
सुवर्ण चूडा परम समुन्नत॥ ४६॥
मयक कर से चमक दमक कर।
मनोज्ञतर दृश्य थे दिखाते॥
जिन्हें युवा एक दृष्टि लख कर।
प्रमोद पय राशि पैर जाते॥ ४७॥
जडे हुए दिव्य रत्न सुन्दर।
निकालते जोति थे निराली॥
बना युवा मत्र मुग्ध लख कर।
हुई हृदय देश में दिवाली॥ ४८॥
शिखर समुज्ज्वल, प्रदीप्त प्रान्तर।
अनेक पादप प्रकाश मडित॥
सुकर समाच्छन्न बहु सरोवर।
विपुल बगीचे विभा अलकृत॥ ४९॥
प्रकोष्ठ से दृष्टि पड रहे थे।
समस्त का कुछ अजब समा था॥

न शक्ति उसमें रही शमन की।
भला न क्यों शान्त, वह विचरती ॥ ६३ ॥
विशद-गगन के अधिकभाग पर।
सजल जलद इस समय जमा था ॥
वहाँ चमकता न था कलाधर।
न चाँदनी का वहाँ समा था ॥ ६४ ॥
कभी कभी भेद कर सघन घन।
प्रकाश निज कान्ति था लखाता ॥
कभी कभी यामिनी विमोहन।
झलक जलद जाल-बीच जाता ॥ ६५ ॥
परन्तु अब भी विशद गगन के।
बचे हुए ये विभाग ऐसे ॥
जहाँ छबीले नक्षत्र गन के।
प्रकोष्ठ थे दिव्य पूर्व जैसे ॥ ६६ ॥
यहाँ वैसही सुचाँदनी थी।
प्रकाश था वैसही मनोहर ॥
सुधा सरस वैसही बनी थी।
प्रदीप्त था वैसही कलाधर ॥ ६७ ॥
परन्तु ऐसे विभाग में भी।
धवल जलद-खण्ड फिर रहे थे।
कई निबिड वारि-वाह से भी।
विचित्रता साथ घिर रहे थे ॥ ६८ ॥
तथापि दो एक भाग अब भी।
बचे हुए थे प्रपंच घन से ॥
नक्षत्र गन थे सशंक तब भी।
प्रफुल्लता दूर थी बदन से ॥ ६९ ॥

कभी किसी भाग का प्रभञ्जन ।
प्रचण्डता पूर्ववत् लगाता ॥
परन्तु अति दीर्घ काय दृढ़ घन ।
प्रयत्न उसका विफल बनाता ॥ ७० ॥
विशेषतः वायु अब अबल था ।
बरञ्च था वह-घनानुसारी ॥
अतः जलद जाल अतिप्रबल था ।
बना हुआ था अक्लिष्ट कारी ॥ ७१ ॥
समय हुआ और ही बदल कर ।
रही न सद्बुद्धि अब सँगाती ॥
कला बनाता मलीन जलधर ।
कला जलद को कलित बनाती ॥ ७२ ॥
कवीकपति का विलोप साधन ।
जलद पटल का प्रधान व्रत था ॥
परन्तु घन को गगन विभूषन ।
सँवारने में समोद रत था ॥ ७३ ॥
विशद गगन बीच जो पयोधर ।
कभी कहीं भी न था दिखाता ॥
वही विविध रूप रंग रचकर ।
दिगंत में भी न था समाता ॥ ७४ ॥
सरस सुधा सिक्त शशिसमुज्ज्वल ।
समीर से सेव्य मान होकर ॥
शनैः शनैः घेर कर गगन तल ।
हुआ अप्रति हत प्रताप जलधर ॥ ७५ ॥
सकल जलद जाल की क्रिया यह ।
विलोकता आदि में युवा था ।

परन्तु इस काल था व्यथित वह ।
प्रसन्न आनन मलिन हुआ था ॥ ७६ ॥

रुक्मिणी-सन्देश ।

(रोला ।)

परम रम्य था नगर एक कुण्डिनपुर नामक ।
जहाँ राज्य करते थे नृप कुल भूषण भीष्मक ॥
सकल सम्पदा सुकृति धाम था नगर मनोहर ।
जहाँ उलहती वेलि नीति की थी अति सुन्दर ॥
एक सुता थी परम दिव्य उनको गुण वाली ।
रूप-राशि से ढँकी अलौकिक साँचे ढाली ॥
थी अपूर्व मुख ज्योति झलकती थी छवि न्यारी ।
नाम रुक्मिणी था, वह थी सब की अति प्यारी ॥
जब विवाह के योग्य हुई यह कन्या सुन्दर ।
कलह बीज-अंकुरित हुआ गृह मध्य भयङ्कर ॥
नृपति, द्वारकाधीश-कृष्ण को देकर कन्या ।
उसे चाहते थे करना अवनी—तल—धन्या ॥
रुक्म नाम का एक पुत्र भूपति वर का था ।
परम क्रूर, क्रोधी महान, वह कुटिल महा था ॥
सहमत वह नहिं हुआ नृपति से पूर्ण रूप से ।
उसने निश्चित किया व्याह शिशुपाल भूप से ॥ ४
यत रुक्म था बड़ा उग्र अतिशय हठकारी ।
शक्तिमान युवराज, राज्य का भी अधिकारी ॥
अत नृपति ने व्यर्थ बखेड़ा नहीं बढ़ाया ।
माना उसका कहा यदपि वह नहिं मन भाया ॥ ५

निकट भूप शिशुपाल रुक्म ने तिलक पठा कर ।
　　व्याह कार्य के लिये किया लोगों को तत्पर ॥
तिथि निश्चित हो गयी बात यह ज्व ने जानी ।
　　आता है व्याहने चेदि भूपति अभिमानी ॥ ६ ॥
विबुध नरों, गायकों, त्रिविध गुणियों, के द्वारा ।
　　सुयश श्रवण करके विचित्र, अनुपम अति प्यारा ॥
यत हृदय दे चुकी हाथ में थीं यदुवर के ।
　　अन व्यथित अति हुई रुक्मिणी यह सुन कर के ॥ ७ ॥
पर सम्भव था नहीं रुक्म का सीधा होना ।
　　उससे कुछ कहना था निज गौरव का खोना ॥
अत हुई वे गुप्त भाव से उद्यम शीला ।
　　वृथा न रोयीं, औ न बनाया मुखडा पीला ॥ ८ ॥
सोचा यदि मैं नीति निपुण गुण निधि प्रभुवर को ।
　　परम विज्ञ, करुणा निधान, यदुवंश प्रवर को ॥
सकल हृदय का भाव स्वच्छता से जतलाऊँ ।
　　औ लिख कर सन्देश यहाँ का सकल पठाऊँ ॥ ९ ॥
तो अवश्य वे अखिल आपदा को टालेंगे ।
　　मर्य्यादा निश्चय अपने कुल की पालेंगे ॥
शमन करेंगे ताप हृदय की पीर हरेंगे ।
　　सफल हमारी मनोकामना सफल करेंगे ॥१०॥
जी मे ऐसा सोच लिखा यक पत्र उन्होंने ।
　　जिसके अक्षर आँखों पर करते थे टोने ॥
अपना आशय प्रकट किया यों सम्मत हो कर ।
　　हे करुणा कर प्रणत पाल, यदुवंश दिवाकर ॥११॥
मैं न कहूँगी एक नृपति की कन्या हूँ मैं ।
　　मुझे लाज लगती है जो परिचय यों दूँ मैं ॥

वरन कहूँगी हूँ चकोरिका चन्द्र वदन की।
प्रभु मैं हूँ चातकी किसी नव-जलधर-तनकी ॥१२॥
पावन पद-पङ्कज-पराग की मैं भ्रमरी हूँ।
परम-अनूपम-रूप-राशि-पानिप-सफरी हूँ॥
मैं कुरंगिनी हूँ पवित्र कल कंठ नाद की।
मैं समुत्सुका-रसना हूँ प्रभु सुयश-स्वाद की ॥१३॥
जैसे देखे बिना रूप भी सौरभ का जन।
हो जाता है सानुराग सब काल सुगंधित वन॥
वैसे ही प्रभु रूप बिना देखे अति प्यारा।
हुई हृदय से सानुराग हूँ तज भ्रम सारा ॥१४॥
सुचरित, सद्गुण, सुकृति, आपकी है महि व्यापी।
इन सब ने ही है सुमूर्ति प्रभु की हिय थापी॥
रूप-जनित अनुराग क्षणिक है, अस्थायी है।
रूप गये औ मोह नसे नहिं सुखदायी है ॥१५॥
पर सद्गुण-सुचरित्र जनित अनुराग सदा ही।
अचल अटल है, अत वही है अति हिय ग्राही॥
सुकर उसी के मैं उमग के साथ बिकी हूँ।
निश्छल, नीरव, समुद, उसी के द्वार टिकी हूँ ॥१६॥
एक मूढ जन इस मेरे अनुराग-स्रोत को।
करके गौरव हीन प्रशंसित, प्रथित गोत को॥
निज इच्छा अनुकूल चाहता है लौटाना।
पर उसने यह भेद नहीं अब लौं प्रभु जाना ॥१७॥
कौन फेर सकता प्रवाह है सुर-सरिता का।
रोक कौन सकता है जलनिधि-पथ का नाका॥
कौन प्रवाहित कर सकता है यत्नों द्वारा।
पश्चिम दिशि में भानु नन्दिनी की खर धारा ॥१८॥

प्रणय-राज्य में बल-प्रयोग अति कायरता है ।
मगल-मय विवाह में कौशल पामरता है ॥
जिस परिणय का हृदय मिलन उद्देश नहीं है ।
वह अवैध है विधि का उस में लेश नहीं है ॥१९॥
जहाँ परस्पर-प्रेम लता है नहिं लहराती ।
वहाँ ध्वजा है कलह कपट की नित फहराती ॥
प्रणय कुसुम में कीट स्वार्थ का जहाँ समाया ।
वहाँ हुई सुख और शान्ति की कलुषित काया ॥२०॥
यह प्रपच सब अनमिल व्याहों से होते हैं ।
जो दम्पति-जीवन का अनुपम सुख खोते हैं ॥
अहह प्रभो ऐसा प्रण क्यों भ्राता ने ठाना ।
जिससे दुख में मुझ को जीवन पडे बिताना ॥२१॥
अब प्रभु तज नहिं अन्य हमारा है हितकारी ।
निरवलम्बिनी हो, मैं आई शरण तुम्हारी ॥
प्रभु-पद-नख की ज्योति हरेगी तिमिर हमारा ।
वही एक अवलम्बन है, है वही सहारा ॥२२॥
पवन विना प्राणी, औ मणि विन फणि, जी जावे ।
यह सभव है प्राण विना जल मछली पावे ॥
है परन्तु यह नहिं कदापि सभव मै जीऊँ ।
जो न प्रभु कृपा सुधा यथा रुचि सादर पीऊँ ॥२३॥
तरु हरीतिमा तजे, उडें विन पख पखेरू ।
हीरा बन जावे, बहु उज्ज्वल होकर गेरू ॥
जल शीतलता तजे, त्याग गति करे प्रभञ्जन ।
तदपि न होगा मम विचार में कुछ परिवर्त्तन ॥२४॥
आप समर्पित हृदय अन्य को कैसे दूँगी ।
हूँगी जो सेविका प्रभु-कमल-पग की हूँगी ॥

कभी अन्यथा नहीं करूँगी मैं न टलूँगी ।
विष खाऊँगी, प्राण तजूँगी, कर न मलूँगी ॥२
मैं हूँ परम अबोध बालिका प्रभु बुधवर है ।
मैं हूँ बहु दुखभगी आप अति करुणाकर हैं ॥
मैं हूँ कृपा-भिखारिणि प्रभु अति ही उदार हैं ।
मैं हूँ विपत-समुद्र पड़ी प्रभु कर्ण-धार हैं ॥२
जैसे मेरी लाज रहे मम धर्म्म न जावे ।
देव-भाग को दनुज न बल-पूर्वक अपनावे ॥
जिस से कलुषित बने नहीं मम जीवन सारा ।
होवे वही, निवेदन है प्रभु यही हमारा ॥२
इस प्रकार चीठी लिख वे चिन्ता में डूबीं ।
भेजूँ क्यों कर किसे सोच यह बातें ऊबीं ॥
छिपी नहीं यह बात रहेगी अन्त खुलेगी ।
उग्र रुक्म से कभी किसी की नहीं चलेगी ॥२
संभव है मम उपकारक को वह दुख देवे ।
उसे नाश करके सरवस उसका हर लेवे ॥
अतः उन्होंने एक योग्य ब्राह्मण के द्वारा ।
पत्र द्वारिको नगर भेजना हृदय विचारा ॥२८
क्योंकि विप्र का किसी काल में वध नहिं होता ।
वह अव्याहत गति में है बहु विघ्न डुबोता ॥
सखियाँ द्वारा सब बातें पहले बतलाईं ।
फिर बुलवा कर उसे आप कोठे पर आईं ॥३०
वातायन में बैठ पत्र को कर में लेकर ।
झुकीं विप्र के देने को अति आतुर होकर ॥
दोनों कर से वसन इधर द्विज ने फैलाया ।
लेने को वह पत्र, शीश ही चकित उठाया ॥३१

इसी काल का चित्र हुआ है अंकित सुन्दर।
देखो द्विज का भाव, वदन रुक्मिणी मनोहर॥
यद्यपि धीर, गभीर, सुप्राकृति राज-सुता की।
स्थिरता लोचन, व्यंजक है उर की दृढ़ता की॥३२॥
तद्पि सामयिक, उत्सुकता, शंका, चञ्चलता।
अङ्कित है की गयी चित्र में साथ निपुणता॥
शीश अचानक लज्जा-शीला का खुल जाना।
परम शीघ्रता वश सम्हालने वस्त्र न पाना॥३३॥
पत्र-दान की तन्मयता को है जतलाता।
अति सशंकता, चंचलता है प्रगट दिखाता॥
जो असावधानता हुई थी आतुरता से।
उसको भी है यही बताता चातुरता से॥३४॥
कसी हुई कटि लोटा डोरी काँधे पर की।
पत्र-ग्रहण की रीति, भाव-भंगी द्विज वर की॥
यात्रा की तत्परता को है सूचित करती।
हृदय अनेकों भाव सरलता का है भरती॥३५॥

सतीसीता।

[षट्पद]

वह शरद ऋतु के अनूठे पंकजों सा है खिला।
तेज है उसको अलौकिक कान्ति मानों सा मिला॥
वह सुधा कमनीय अपने कान्त हाथों से पिला।
बस गई सुकलत्रता को है सदा लेता जिला॥
इस कलंकित मेदिनी में है सतीपन वह रत्न।
पा जिसे है पूत होता कामिनी अपुनीत तन॥१॥

वह गगन वह है जहाँ उठता नहीं अविचार-घन।
है नहीं जिस में कलह रज-लेश यह वह है पवन॥
है नहीं जिस में कपट का कीट यह वह है सुमन।
है पड़ी जिसपर न स्वारथ छींट यह वह है वसन॥
है न जिस में कटुकता, मद, मान यह है वह सुफल।
यह सलिल है वह, नहीं जिस में मनो मालिन्य मल॥
सुख सदन का दीप यह है नीति निधि का विधु विमल।
यह परस्पर प्यार सर के अंक का है कल कमल॥
वर गुणों, विनयादि की उत्पत्ति का है मञ्जु थल।
प्रेम के अभिराम व्रत का है बड़ा ही दिव्य फल॥
यह सुभावुकता सरोजिनि के लिये है भानु कर।
पूत चरितावलि मही-रुह के लिये है वारिधर॥
हैं सुलभ जातीं इसी के हाथ से जग-उलझनें।
स्वर्ग से, जंजाल में डूबे सदन, इससे बनें॥
दुख भरे परिवार इससे ही हुए मन-भावने।
पूत-दम्पति-सुख इसी से ही सुधा में हैं सने॥
ज्ञान की गरिमा रँगी भव के प्रपंचों की जयी।
जाति बनती है इसी की गोद में गौरवमयी॥
राजती जिन में सतीपन की रही पूरी कला।
पा जिन्हें सुपुनीत होकर देश यह फूला फला॥
गा चरित जिनका हुआ बहु कामिनी कुल का भला।
अंक में जिस के सुगौरव आर्यगण का है पला॥
हो गई हैं भूमि भारत में कई ऐसी सती।
हैं उन्हीं में एक मेदिनि नन्दिनी शुचि रुचिवती॥
वक्र भौंहों को बना जब कोप धाता ने किया।
जब पिता ने रामको चौदह बरस का बन दिया॥

राज श्री ने फेर जब उनसे बदन अपना लिया ।
तज सकीं उन दुर्दिनों में भी नहीं उनको सिया ॥
कज से कमनीय कोमल गात पर आँचें सहीं ।
किन्तु अपने प्राणपति की वे बनी छाया रहीं ॥ ६ ॥
राज-सुख था, थे जनक से तात, दशरथ से ससुर ।
सम्पदा सुरलोक की थी, औ विभव भी था प्रचुर ॥
कौसिला सी सास का शुभ अङ्क था अति ही मधुर ।
मुख कमल था जोहता उत्कण्ठ होकर सर्व पुर ॥
किन्तु पति को छोडकर वे रह सकीं गृह में नहीं ।
क्या कलाधर त्याग कर हे कौमुदी रहती कहीं ॥ ७ ॥
सुर सदन की सी सुहाती थी कुटी पत्तों बनी ।
व्यञ्जनों से थी सरसता कद, मूलों म घनी ॥
शीश पर फैली लतायें थीं वितानों सी तनी ।
धूप लगती थी उन्हें राका रजनि की चाँदनी ॥
श्याम घन सी तन-छटा अवलोक आँखों वर बदन ।
था हुआ नन्दन विपिन सा मुग्धता आधार वन ॥ ८ ॥
काल पाकर वे हुईं निज प्राण प्यारे से अलग ।
प्रेम में उनके गया लकेश सा लोकेश पग ॥
खुल गया उनके लिये भव राज सुख का मञ्जु मग ।
चूमने बहु सम्पदा उनका लगी फिर कज पग ॥
चख उठाकर किन्तु उनकी ओर ताका तक नहीं ।
रात दिन बनके तपस्वी के लिये रोती रहीं ॥ ९ ॥
जिस दिवस रघुवश मणि उर म हुआ भ्रमका उदय ।
वह दिवस उनके लिये था और भी आवेग-मय ॥
आँख में आँसू नहीं था पर विहरता था हृदय ।
क्षोभ औ सताप से थी बन गई धरती निरय ॥

किन्तु ऐसे काल में भी वे नहीं विचलीं तनक।
 है निखरती और भी पड आँच में आभा कनक ॥१
है जिसे अपनी पडी, है प्रेमिका सच्ची न वह।
 प्राण पति कहती जिसे है, है उसी का प्राण यह ॥
है वृथा जीना, मलिनता जो गयी चित-बीच रह।
 क्या नहीं सकती सती भू में पती के हेतु सह ॥
सोच यह परतीत पतिहित प्राण की ममता तजी।
 कूद-पावक अक, उसमें से कढ़ीं पुष्पों सजी ॥११
आह! आया वह दिवस भी जब उन्हें पति ने तजा।
 जा बसीं अकेली विपिन के बीच जब जनकाङ्गजा ॥
छोड साग राजसुख कनकायतन फूलों सजा।
 जब विताने वे लगीं निजवार दुख किंगरी बजा ॥
जब सगा वे खोज कर भी थीं नहीं पाती कहीं।
 देख जब उनकी दशा वन पक्षियाँ रोती रहीं ॥१२॥
उन दिनों भी इस सती का राम-मय जीवन रहा।
 जब कहा कुछ तब यही अपने कमल मुख से कहा ॥
राज्य पालन पथ में है लोक रंजन व्रत महा।
 है वही नृप, रख इसे, जिसने मही पर यश लहा ॥
जो उचित था औ उचित था है वही पतिने किया।
 है पतित, निन्दित, नृपति वह जो कलंकित हो जिया॥१३॥
जो नरोंसा ही नृपति भी मोह-ममता में फँसे।
 प्यार सुत चित नारिका, उन जैसे ही जो उर बसे॥
जो न उसमें आत्मबल हो जो न वह चितको कसे।
 तो न है नृप वह, वृथा शिर पर मुकुट उसके लसे॥
है वही नर नाथ जो है न्याय पथ पहचानता।
 आत्म-हित से लोक हित को जो महत है मानता ॥१४॥

ज स्वारथ का समय है, प्यास समता है चढ़ी ।
घिर रहा है उर गगन में आत्म-गौरव की चढ़ी ॥
अधिक सभय कहँ सुकुमारियाँ लिक्खी पढ़ी ।
जानकी सम्बन्धिनी बातें बहुत सी हैं गढ़ी ॥
हों गढ़ी, पर आत्म त्याग किये बिना तज कामना ।
है न होता लोक हित होती है नित अवमानना ॥१५॥

सुतवती सीता ।

[छप्पै]

कुसुम सु कोमल अल्प वयस दो बालकवाली ।
सहित केश विन्यास प्रकृति पावन कर पाली ॥
एक आध गहने पहने साधारण-वसना ।
मुख गँभीरता नहिं जिसकी कह सकती रसना ॥
यह देवि स्वरूपा कौन है वन भूतल में भ्राजती ।
कुसुमित पौधों के मध्य में पादप मूल विराजती ॥१॥
वन निवास के समय निम्न बहु विटप मनोहर ।
जो अवलोकी गई परम पति रता निरंतर ॥
तरु अशोक के तले पुरी लंका में प्रतिपल ।
जिसकाविकशितहुआअलौकिकचारुचरितदल ॥
उस तपो भूमि में जहाँ से रामचरित धारा बही ।
यह उसी सती की अति रुचिर मातृ मूर्ति है लस रही ॥२॥
निकट विलसते लव कुश नामक युगल तनय हैं ।
भोले भाले परम सरलता निधि मुदमय हैं ॥
पति वियोग विधुरा व्यथिता के प्रिय सम्बल हैं ।
दुख पयोधि में विवश पड़ी के पोत युगल हैं ॥

किन्तु ऐसे काल में भी वे नहीं विचलीं तनक ।
है निखरती और भी पड आँच में आभा कनक ॥१
है जिसे अपनी पडी, है प्रेमिका सच्ची न वह ।
प्राण पति कहती जिसे है, है उसी का प्राण यह ॥
है वृथा जीना, मलिनता जो गयी चित वीच रह ।
क्या नहीं सकती सती भू में पती के हेतु सह ॥
सोच यह परतीत पतिहित प्राण की ममता तजी ।
कूद-पावक अक, उसमें से कढीं पुष्पों सजी ॥१
आह ! आया वह दिवस भी जब उन्हें पति ने तजा ।
जा वसी अकेली विपिन के वीच जब जनकाङ्गजा ॥
छोड़ सारा राजसुख कनकायतन फूलों सजा ।
जब चिताने वे लगीं निजवार दुख किंगरी बजा ॥
जब सगा वे खोज कर भी थीं नहीं पाती कहीं ।
देख जब उनकी दशा वन पक्षियाँ रोती रहीं ॥१२
उन दिनों भी इस सती का राम मय जीवन रहा ।
जब कहा कुछ तब यही अपने कमल मुख से कहा ॥
राज्य पालन पथ में है लोक रजन-व्रत महा ।
है वही नृप, रख इसे, जिसने मही पर यश लहा ॥
जो प्रथित था औ उचित था है वही पतिने किया ।
है पतित, निन्दित, नृपति वह जो कलकित हो जिया॥१३
जो नरोंसा ही नृपति भी मोह-ममता में फँसे ।
प्यार सुत वित नारिका, उन जैस ही जो उर बसे ॥
जो न उसमें आत्मवल हो जो न वह चितको कसे ।
तो न है नृप वह, वृथा शिर पर मुकुट उसके लसे ॥
है वही नर-नाथ जो है न्याय पथ पहचानता ।
आत्म हित से लोक हित को जो महत है मानता ॥१४॥

सिय मुख पर कर्तव्य बुद्धि यह बहु व्यंजित है ।
उससे उसकी गुरु गँभीरता अति रंजित है ॥
जो प्रसून उनका बालक है उन्हें दिखाता ।
मञ्जुल वचन वही उनके मुख पर है लाता ॥
वे जिस वत्सलता, सरसता से हैं बातें कह रहीं ।
वह केवल अनुभवनीय है सुकथनीय कथमपि नहीं ॥८॥
क्या वह यह कहती हैं ये उर-उदधि कलाधर ।
तेरे जैसा ही प्रसून भी है अति सुन्दर ॥
प्राणि नयन रंजिनी परम न्यारी छवि वाली ।
तव कपोल अधरों सी है इसकी भी लाली ॥
कोमलता इस पर वैसि ही है लसती मन मोहती ।
तेरे तनकी सुकुमारता जैसी हैं अवलोकती ॥९॥
हैं समानता तुझमें और सुमन में इतनी ।
किन्तु तात इसमें गुण गरिमायें हैं कितनी ॥
बहुत प्यार करके सप्रेम सुर शीश चढ़ाने ।
या पाँवों से मसल धूल में इसे मिलाने ॥
पर यह सुवास तजता नहीं यों रहता है एक रस ।
कैसेही उनमें विरसता नहीं होती जो है सरस ॥१०॥
यह सुरभित केवल तिलही को नहीं बनाता ।
निज सुगंधि दे रज का भी है मान बढ़ाता ॥
निज प्रफुल्लता से नर ही को नहिं पुलकाता ।
बनता है यह मधुप कीट का भी सुख दाता ॥
जो हैं जग में सच्चे सुमन क्या कह उन्हें सराहिये ।
उनकी गुणमयता विकचता होती है सबके लिये ॥११॥
यह प्रसून काँटों में ही रहता पलता है ।
पर कैसी इसमें सुमधुरता कोमलता है ॥

परितापवत चित सुतरुहित युग कलसे है सलिलमय।
यक हृदय सदन तम वलित के ज्योतिमान हे दीप द्वय ॥३॥

अग्रज को अवलोक लिये यक कुसुम मनोहर।
फिर करते आलाप देख जननी से प्रिय तर॥
हुआ कुसुम के लिये द्वितिय बालक भी चञ्चल।
औ जा बैठा निकट एक पादप प्रसून कल॥
प्रिय सुमन तोडने के समय जो प्रफुल्लता मुख लसी।
वह अति अनुपम है प्रात रवि प्रभा कमल पर आ बसी ॥४॥

कुसुम लाभ, उसके अवलोकन का विनोद मिल।
अति सुन्दरता लग उठा हैं आनन पर खिल॥
या राका पति अक विकचता उफन पडी है।
अथवा खिले गुलाब में सरसता उमडी है॥
नन्दन कानन के अति कलित विकसित किसी प्रसून पर।
अथवा अनुपमता सँग लसी स्वर्ग ज्योति कमनीय तर ॥५॥

पा सम्मुख कर कुसुमवान बालक को सीता।
हस्त कमल के साथ उसे पकडे हो प्रीता॥
जिस रसालता मृदुता सँग हैं समालाप रत।
हो सकता हे वह भावुक जन को ही अवगत॥
अवलोक वदन गभीरता उठी तर्जनी कला मय।
कलनीय कान्त भावों वलित नहि होता किसका हृदय ॥६॥

माता है मानव-जीवन की नींव जमाती।
उसे पूत, उन्नत, उदार है वही बनाती॥
ज्यों सोनार भूषण स्वरूप का है निर्माता।
त्योंही है माता विचार जन हृदय विधाता॥
बालक उर मृदु महि बीच जो मा बोती है बीज चय।
फल बहु विध लाता है वही हो अकुरित यथा समय ॥७॥

जग-जनित ताप उप शमन के लिये त्याग निजता गिला ।
सौमित्र आत्मरति नीर था राम प्रीति पय में मिला ॥१७॥
कुंठितमति पौरुष विहीनता पर वशता से ।
थे न सिया-पति अनुगत थे स्वारथ परता से ॥
सरल हृदय में भ्रातृ-भक्ति उनके थी न्यारी ।
जिसने थी मोहनी अपर भावों पर डारी ॥
उनके जीवन हिम गिरि-शिखर पर अमरावति से लसी ।
राका-रजनी-चाँदनी सी स्नेह वीरता थी लसी ॥१८॥
वे वासर थे परम मनोहर दिव्य दरसते ।
जब थे भारत अक लखन से बधु विलसते ॥
आज कलह, छल, कूट-कपट घर घर है फैला ।
हृदय बधु से बधु का हुआ हे अति मैला ॥
हे प्रभो ! बधु सौमित्र से फिर उपजें, गृह गृह लसें ।
शुचि चरित सुखी परिवार फिर भारत वसुधा में बसें ॥१९॥

उर्मिला ।

[षट्पद ।]

किसी ऊबती से न जी जो बचावें ।
न दुख और का देख जो ऊब जावें ॥
कढी आहें बेचैन जिन को बनावें ।
जिन्हें प्यार की है परख वे बतावें ॥
किसी दिन भी दो बूंद आँसू गिरा कर ।
हमारी पडी आँख है उर्मिला पर ॥ १ ॥
उसी उर्मिला पर न जिसने जताया ।
किसी को दरद औ न दुखडा सुनाया ॥

उस पर से ही उतर पार सेना सब आई।
फिर लंका पर धूम धाम से हुई चढ़ाई ॥
रण छिड़ जाने पर लखन ने जो दिखलाया विपुल बल।
वह अकथनीय है अगम है वीरवृन्द में है विरल ॥१३॥
सुनकर धनु टंकार मेदिनी थर्राती थी।
दिग्दंती की द्विगुण दलक उठती छाती थी ॥
विशिख-वृन्द से नभ मण्डल था पूरित होता।
जो था दश दिशि बीच बहाता शोणित सोता ॥
प्रलय वन्हि थी दहकती त्रिपुरारी थे कोपते।
जिस काल वीर सौमित्र थे समर भूमि पग रोपते ॥१४॥
अमर वृन्द जिसके भय से था थर थर कँपता।
जो प्रचंड पूषन सा था रण भू में तपता ॥
पाहन द्वारा गठित हुई थी जिसकी काया।
विविध भयंकर-मूर्त्ति मती थी जिसकी माया ॥
वह परम साहसी अति प्रबल मेघनाद सा रिपु दमन।
जिसके कोपानल में जला धन्य वह सुमित्रा सुअन ॥१५॥
बालमीक मुनि पुंगव ने वदनाम्बुज द्वारा।
चरित सुमित्रा सुत का जो अति सरस उचारा ॥
वह नितान्त तेजोमय है अति ओज भरा है।
एक राम-जीवन-मय है निरुपम सुथरा है ॥
निज रुचि प्रियता-ममतादि का है न पता उसमें कहीं।
धारायें उसमें राम हित की शुचिता सँग है वहीं ॥१६॥
अ कपट-चित्त से बन अनन्य मन रोप युगल पग।
वे करते अनुसरण राम का नीरवता सँग ॥
उसी काल यह मौन तपस्वी जीह हिलाता।
मान सुयश हित रघुपति पर जब सकट आता ॥

जग-जनित ताप उप शमन के लिये त्याग, निजता गिला।
सौमित्र आत्मरति नीर था राम प्रीति पय में मिला ॥१७॥
कुंठितमति पौरुप विहीनता पर वशता से।
ये न सिया पति अनुगत थे स्वारथ-परता से॥
वरन हृदय में भ्रातृ-भक्ति उनके थी न्यारी।
जिसने थी मोहनी अपर भावों पर डारी॥
उनके जीवन हिम गिरि-शिखर पर अमरावति से खसी।
राका-रजनी-चाँदनी सी स्नेह धीरता थी लसी ॥१८॥
वे वासर थे परम मनोहर दिव्य दरसते।
जब थे भारत अरु लखन से बधु विलसते॥
आज कलह, छल, फूट कपट घर घर है फैला।
हृदय बधु से बधु का हुआ है अति मैला॥
हे प्रभो! बधु सौमित्र से फिर उपजें, गृह गृह लसें।
शुचि चरित सुखी परिवार फिर भारत वसुधा में बसें ॥१९॥

उर्मिला।

[षट्पद।]

किसी ऊबती से न जी जो बचावें।
न दुख और का देख जो ऊब जावें॥
कढ़ी आहें बेचैन जिन को बनावें।
जिन्हें प्यार की है परख वे बतावें॥
किसी दिन भी दो बूंद आँसू गिरा कर।
हमारी पडी आँख है उर्मिला पर ॥ १ ॥
उसी उर्मिला पर न जिसने जताया।
किसी को दरद औ न दुखड़ा सुनाया॥

तड़पता कलेजा न जिसने दिखाया ।
न कोसा किसी को न मुखड़ा बनाया ॥
विरह-वेलि जिसने हृदय बीच बोई ।
जली रात दिन फूट कर जो न रोई ॥ २ ॥
जिसे प्यार कर, थी न फूले समाती ।
न जिसका वदन देख कर थी अघाती ॥
न जिसके बिना थी कभी चैन पाती ।
मधुर बात जिसकी बहुत थी लुभाती ॥
रही पद सलिल प्रात ही जिसका पीती ।
रही देख जिसकी कनक कान्ति जीती ॥ ३ ॥
उसी ने किया आह उससे किनारा ।
न आई दया औ न दुख को विचारा ॥
न एक बार उसके वदन को निहारा ।
न देखी दृगों से गिरी वारि-धारा ॥
न दस पाँच दिन या वरस दो वरस को ।
चला वह गया वन में चौदह बरस को ॥ ४ ॥
सिसिकती रही वह पड़ी एक कोने ।
सुना सब, निकल किन्तु आई न रोने ॥
कलेजे में दुख के पड़े बीज बोने ।
उसे सब सुखों से पड़े हाथ धोने ॥
न तब भी विकल प्रान पति को बनाया ।
न मुखड़ा डुबा आँसुओं में दिखाया ॥ ५ ॥
जनक नन्दिनी सामने राम आईं ।
किसी से तनिक भी न सहमी लजाईं ॥
विलप कर विरह वेदनायें सुनाईं ।
दृगों में भरी वारि बूँदें दिखाईं ॥

अवध सब उठा कँप कुमारौ विरह से ।
हिली तक नहीं उर्मिला निज जगह से ॥ ६ ॥
जनक के सदन में पली उर्मिला थी ।
सहेली सिया उच्च-कुल कन्यका थी ॥
इसी से कहूँगा न वह निष्ठुरा थी ।
वरन प्यार के रग डूवी महा थी ॥
तनिक भी नहीं जो जगह से हिली वह ।
वडी ही समझ बूझ की वात थी यह ॥ ७ ॥
रहे राम स्वाधीन जेठे सहोदर ।
उन्हें था न सकोच सकते थे सब कर ॥
सुमित्रा सुअन थे पराधीन सहचर ।
विविध राम सेवादि में रत निरन्तर ॥
इसी से न वह साथ सकते थे ले जा ।
सुमुखि उर्मिला को कठिन कर कलेजा ॥ ८ ॥
तिया ले अगर साथ सौमित्र जाते ।
वडे काम तो एक भी कर न पाते ॥
कहाँ तक लजाते ढिठाई दिखाते ।
वडों की वडाई कहाँ तक निभाते ॥
असुविधा सभी वात में मुख दिखाती ।
वँधी मेंड मरजाद की टूट जाती ॥ ६ ॥
समझती रही उर्मिला वात सारी ।
रही पति हृदय से उसे जानकारी ॥
नहीं मानती थी उसे वह सु नारी ।
जिसे कंत अनुगामिता हो न प्यारी ॥
इसी से नहीं निज जगह से टली वह ।
जहाँ थी वहीं दव विरह में जली वह ॥ १० ॥

नहीं जो पती का हृदय जान पाती।
नहीं आपही जो उचित कर दिखाती॥
कठिन काल में जो नहीं काम आती।
नहीं जो पती हेतु निजता गँवाती॥
न कोई सकेगा उसे कुल वधू कह।
न है प्यार के पथ की पथिनी वह॥ ११॥
भरी बात में हो बड़ी ही मिठाई।
लगी किन्तु होवे कलेजे में काई॥
तनिक स्वार्थ बू प्यार में हो समाई।
दुई की झलक हो दृगों रँग लाई॥
भला है न तो ब्याह मंडप में आना।
भरे लोग में नेह-गाँठें गठाना॥ १२॥
रही उर्मिला कुल-वधू आर्य्य बाला।
मिला था उसे उर बड़ा प्यार वाला॥
इसी से बहुत जी को उसने सम्हाला।
पकड़ कर कलेजा सहा सब कसाला॥
बड़े लाड औ प्यार के साथ पोसी।
जली औ घुली मोम की बत्तियों सी॥ १३॥
न तब भी किसी ने गले आ लगाया।
न पोंछा सलिल जो दृगों ने बहाया॥
न कर तक उसे बाँधने को बढ़ाया।
दिखाई पड़ी तक किसी की न छाया॥
न सोचा किसी ने कभी आँख भर कर।
गई बीत क्या इस सरल बालिका पर॥ १४॥
सभी की बड़ों ओर है आँख जाती।
दुखी दीन की है किसे याद आती॥

नहीं दुद जो रो कलप कर मचाती।
नहीं पीर उसकी, किसी को जनाती॥
सदा ही यही ढंग जग का दिखाया।
किसे नादनिधि में नदी-रव सुनाया॥ १५॥

सच्चा प्रेम।

[ललित पद।]

अमरलोक से आ उतरी सी एक अलौकिक बाला।
क्षितितल पर निज छवि छिटकाती करती रूप उजाला॥
कलित किनारी वलित परम कमनीय वसन तन पहने।
विलसित है जिसके अंगों पर रतन-खचित वर गहने॥ १॥
रखे कमल सम दाँये कर पर लोटा सजल निराला।
लिये वाम कर में कुसुमों की थाली अनुपम आला॥
जैसे ही निज कान्त सदन से पुलकित बाहर आई।
वैसे ही एक मूर्त्ति अलौकिक सम्मुख पड़ी दिखाई॥ २॥
था उसका अभिराम श्याम तन कोटि काम मद हारी।
जिस पर नव विभूति विलम्बित थी भव विभूति से न्यारी॥
शिर पर मञ्जुल जटा-छटा थी तन पर था मृग-छाला।
कंबु मनोरम मृदुल गले में थी विराजती माला॥ ३॥
सकमंडल कर में लकुटी थी कानों में मुद्रायें।
अंकित थीं सुविशाल भाल पर रुचिर तीन रेखायें॥
विकच-नील अरविन्द विनिन्दक थी मुख इन्दु निकाई।
युगल भौंह ने जिस पर उपमा अलि-अवली की पाई॥ ४॥
अनुरंजित अनुराग-लाग में डूबे सहज कबीले।
रतनारे, न्यारे, कजरारे, थे युग नयन रसीले॥

ललित अधर पर विलस रही थी हँसी सरस अभिरामा।
अंग अंग थी सुछवि छलकती देख ललकती वामा ॥५॥
तिरछी आँखों से विलोक कर यह मूरति मन हारी।
चकित हुई मृग शावक-लोचनि विकच वनी उर क्यारी॥
उठे न पाँव, पधार सकी नहिं पड़ी प्यार के पाले।
श्याम स्वरूप अनूप रूपने औचक फंदे डाले ॥६॥
चकित, थकित, पुलकित, नचला को देख श्याम-वपु बोले।
अपनी रुचिर वचन रचना में सरस सुधा रस घोले॥
ऐ विधि की कल कीर्त्ति-लता की कुसुमावलि में आला।
जग ललामता कोमलता की कान्ति-विधायिनि बाला ॥७॥
मानव-रतन कौन है वह, तू है जिसके रँग-राती।
जिसके हित पूजने उमा-पति प्रति वासर है जाती॥
होगा बड़ा भाग-वाला वह, मैं, हूँ महा अभागा।
विधि-वश सुर-दुर्लभ विभूति से जो मम मन अनुरागा॥८॥
देख सामने खिली मालती मैं हूँ बल बल जाता।
पर उसके सँग जी बहलाने पल भर भी नहिं पाता॥
मैं हूँ वह प्यासा, समीप जिसके है रस का प्याला।
किन्तु उसे छू सकने तक का पड़ा हुआ है लाला ॥९॥
उमड़ घुमड़ कर घन सनेह है दया-वारि बरसाता।
पर निज चातक को दो बूँदें देते, है अकुलाता॥
पारावार अपार रूप का लहराता है आगे।
पर अनुकूल लहर पा कर के भाग न मेरे जागे ॥१०॥
कल मलयानिल अति समीप से बहुधा है बह जाता।
किन्तु कभी भी मम ही-तल को शीतल नहीं बनाता॥
यह परपंच देख कर जग का मेरा जी अकुलाया।
जोगी बन मैं वन वन घूमा अंग भभूत रमाया ॥११॥

किन्तु चित्त ने चैन न पाया मन भी हाथ न आया ।
टली न आधि, समाधि लगी नहिं, मिटी न ममता माया ॥
आसन मार रोक मन को जब मैं हूँ ध्यान लगाता ।
तब उसका ही रूप राशि मम उर में है खिल जाता ॥१२॥
कोमल किशलय, कल कुसुमावलि, मञ्जुल वञ्जुल कुञ्जें ।
पारावत केकी-पिक-सकुल-मुखरित विपुल-निकुञ्जें ॥
उस ललामता खनि की मुझको प्रति पल याद दिला के ।
परमाकुल करती हैं कितनी ललित कला दिखला के ॥१३॥
रजनि सुन्दरी जब नखतावलि मुक्त माल है पाती ।
जब चाँदनि मिस मृदु मुसुकाती, है विधुवदन दिखाती ॥
तब मैं पुलकित क्या होऊँगा अति विचलित हूँ होता ।
बड़े वेग से वह जाता है उर में वहु दुख-सोता ॥१४॥
सरस पवन जब सन सन चलकर है सुर मधुर सुनाती ।
तब हो सुरति विभूषन ध्वनि की भर आती है छाती ॥
प्रात काल मृदुल रवि कर जब हैं कमलिनि को छूते ।
तब होता हूँ विपुल विकल आँसू चख से हैं चूते ॥१५॥
किसी काल में जैसे तन को नहीं छोड़ती छाया ।
निकल नहीं सकता वैसे ही उर में रूप समाया ॥
सुर दुर्लभ विभूति को मुझ सा पामर जन नहिं पाता ।
दिवि ललाम भूता ललना से क्या है कपि का नाता ॥१६॥
चरम शान्ति की मूर्त्ति सुशीले तू बतला इतना ही ।
कैसे शान्ति मिलेगी मुझको क्यों होगी चित-चाही ॥
तू है सरल, शिरोमणि तू हे प्रेम पथ पथिका की ।
इसी लिये हूँ दया पूछता तुझ से हृदय विथा की ॥१७॥
निज कर कमल राजते जल लों तू उर तरल बनावे ।
फिर उसकी सनेह धारा सों सारा ताप नसावे ॥

कर की सुमनवती थाली लौं सुमनवती बन वाले।
मुझ ऊबे, वियोग वारिधि में डूबे को, अपना ले।
जैसे मान सके मेरा मन वैसे इसे मना दे।
अधिक क्या कहूँ मेरी बिगड़ी जैसे बने, बना दे॥
इतना कह कर मौन हुआ वह प्रेम पंथ-मतवाला।
ललना के तन मन-नयनों पर जादू डाल निराला॥१६॥
मुदित दिशायें हुईं, मंजु लतिकायें मृदु मृदु डोलीं।
खिले प्रसून, बेलियाँ विकसीं, चिड़ियाँ स्वर से बोलीं॥
इसी काल का चित्र मनोहर यह सामने विलोको।
उसमें चित्रकार-कर-कमलों का कौशल अवलोको॥२०॥
प्रेमिक की सुन प्यारी बातें प्रेम रंग में डूबी।
पहले हुई अतिचकित बाला फिर चञ्चल हो, ऊबी॥
जिसकी प्रीति लाभ हित प्रति दिन था पुरारि को पूजा।
जिसके तुल्य आँख में उसकी था न अवनि में दूजा॥२१॥
उसको निज अनुरक्त देख यों देह-दशा वह भूली।
प्रेम-उमंग रंग रञ्जित हो ललित लता लौं फूली॥
फिर प्रतिपल अति पुलकित होती छवि विलोकति बाँकी।
उसने उसी सलिल-सुकुसुम से प्रियतम की पूजा की॥२२॥
जो दो उर थे संगम कामुक पड़े प्रेम के पाले।
वे यों आज मिले दिखला कर अपने ढंग निराले॥
जिस पर जिसका सत्य प्रेम भूतल में है हो जाता।
है सन्देह न कुछ भी इसमें वह उसको है पाता॥२३॥

संयुक्ता ।

[छप्पै]

आर्यवंश की विमल कीर्त्ति को ध्वजा उड़ाती ।
क्षत्रिय कुल ललना प्रताप पौरुष दिखलाती ॥
कायर उर में वीर भाव का बीज उगाती ।
निबल नसों में नवल रुधिर की धार बहाती ॥
विपुल वाहिनी को लिये अतुल वीरता में भरी ।
सबल बाजि पर जा रही है संयुक्ता सुन्दरी ॥ २ ॥
प्रबल नवल-उत्साह-अङ्क बीरता बसी है ? ।
या साहस की गोद बीच धीरता लसी है ?
परम ओज के संग बिलसती तत्परता है ।
या पौरुष के सहित राजती पीवरता है ॥
चपल तुरग की पीठ पर चाव-चढ़ी चित मोहती ।
या दिल्लीश के अंक में है संयुक्ता सोहती ॥ २ ॥

शिशु-स्नेह ।

[छप्पै]

सहज सुन्दरी अति सुकुमारी भोली भाली ।
गोरे मुखड़े, बड़ी बड़ी कल आँखों वाली ॥
खिले कमल पर लसे सेवारों से मन भाये ।
खुले केश, जिसके सुकपोलों पर हैं छाये ॥
बहु-पुलक भरी मन मोहिनी कुछ भौंहें बाँकी किये ।
यह सरल बालिका कौन है नवल बाल अंकम लिये ॥ १ ॥
खिली कमलिनी अंक गुलाब कुसुम विकसा है ।
या भोलापन परम सरलता संग लसा है ॥

या विधि न्यारे कर के कलित खेलोने ये हैं।
जो जन की युग आँखों पर करते टोने हैं॥
या जीवन-तरु रस-मूल के ये फल हैं प्यारे परम।
या प्रकृति-कोष कमनीय के ये हैं रत्न मनोज्ञतम॥२॥
अपना विकसित वदन बड़े चावों से रख कर।
खिले फूल से शिशु के सुन्दर मुखड़े ऊपर॥
कौन अनूठा भाव बालिका है बतलाती।
कौन अनोखा दृश्य दृगों को है दिखलाती॥
क्या सूचित करती है उन्हें, हैं भावुक जो भूमि पर।
ये युगल कलाधर हैं मिले उर कुमोद उत्फुल्ल कर॥३॥
दोनों शिशु उर प्यार-बीज अंकुरित नहीं है।
क्यों होता है विकच वदन यह विदित नहीं है॥
किसी काल जब मिल जाते हैं दो प्यारे जन।
क्यों होता है मोद, विकस जाता है क्यों मन॥
इस गूढ बात का मरम भी यदपि नहीं कुछ जानते।
हैं तदपि मुदित वे, हैं मनों मोद-सिंधु अवगाहते॥४॥
रविकर कोमल परस, कमल कुल खिल जाता है।
पाकर पवन वसंत रंग पादप लाता है॥
क्या उनका है प्यार, मोद वे क्यों हैं पाते।
किस स्वाभाविक सूत्र से बँधे वे किस नाते॥
यह सकल श्रीमती प्रकृति की परम अलौकिक है कला।
है वह अंशों में प्राणि-उर एक रंग ही में ढला॥५॥
क्यों प्रफुलित मुख देख, चित्त है प्रफुलित होता।
क्यों रसमय उर उरों बहाता है रस सोता॥
क्यों बीणा बजकर है सरव सितार बनाती।
क्यों मृदंग-ध्वनि है पनवों में ध्वनि उपजाती॥

इस में नहिं अपर रहस्य है सकल हृदय है एक ही।
स्वर जैसे बीन सितार, औ पनव मृदंग जुदा नहीं ॥ ६ ॥
है दोनों शिशु हृदयवान नेही हैं दोनों।
रत्न मनोहर एक खानि के ही हैं दोनों ॥
फिर क्यों उनका परम प्रेममय उर नहिं होगा।
देख एक को मुदित, अपर क्यों मुदित न होगा॥
नव कला कुमुदिनी-कान्त की जो विकाश पाती नहीं।
है क्या स्वाभाविक मञ्जुता उस में सरसाती नहीं ॥ ७ ॥
इन शिशुओं की प्रीति परम आनद-पगी है।
अति विमला है लोकोत्तरता रंग रँगी है॥
भावमयी, रसमयी, रुचिर उल्लासमयी है।
दृग विमोहिनी चित्तरंजिनी नित्य नयी है ॥
यह लोक विकाम्भिनि शक्ति के, कमल करों से है छुई।
यह वह अति प्यारी वस्तु है, स्वर्ग सुधा जिस में चुई ॥ ८ ॥
इस सनेह में नहीं स्वार्थ की बू आती है।
कपट, बनावट नहिं प्रवेश इस में पाती है॥
छींटें इस पर पड़ी नहीं छल बल की होतीं।
चित मलीनता नहिं इसकी निर्मलता खोती॥
यह वह प्रमोद बन है, नहीं अनबन बायु जहाँ बही।
यह वह प्रसून है, उपजता कलह-कीट जिस में नहीं ॥ ९ ॥
क्यों कोमल किशलय हैं जी को बहुत लुभाते।
क्यों पशु के बच्चे तक हैं चित को बिलमाते॥
बाल-भाव हैं परम रम्य है बहु मुददाता।
आँखों भर उसको लख कर है जग सुख पाता॥
मानव कुल के ये शिशु-युगल अति सुन्दर प्यारों पगे।
मन, नयन विमोहेंगे न क्यों, सहज भाव सचे सगे ॥१०॥

माता का प्यार ।

[पद]

उठो लाल नभ लाली छाई ॥
खिलीं गुलाब अनूठी कलियाँ ।
विकसित हो कमलिनि रँग लाई ॥
पुलकित कर सारा पृथिवी तल ।
बही पवन प्यारी मन भाई ॥
हिली पत्तियाँ लतिका डोलीं ।
पेड़ों ने अनुपम छवि पाई ॥
लगीं चहकने जग कर चिड़ियाँ ।
चकई चकवा के ढिग आई ॥
दिशा हुई आलोकित, कुसुमों ।
ओर अलि अवलि आकुल धाई ॥ १ ॥
जागो प्यारे किरनें फूटीं ॥
अति छवि साथ निधन तम करके ।
छिति तल ओर छिटिक कर छूटी ।
जगत जगमगा, गिरि शिखरों पर ।
तरु पर रुचिर जोतियाँ जूटीं ॥
रजनि-सुन्दरी उर पर लसती ।
मोती की मालायें टूटीं ॥ २ ॥
मेरे प्यारे आँखें खोलो ॥
बीती रात छिपे सब तारे ।
लो पानी अपना मुख धो लो ॥
वचन तोतले बड़े रसीले ।
उठकर किलक किलक के बोलो ॥

थीं इसी जातीय भाषा के हिंडोले में पलीं।
फूँक से जिनकी घटायें आपदाओं की टलीं ॥ ३ ॥
है कलह औ फूट का जिसमें फहरता फरहरा।
दंभ-उल्लू-नाद जिस में है बहुत देता डरा ॥
मोह, आलस, मूढता, जिस में जमाती है परा।
वह अँधेरा देस का बहु आपदाओं से भरा ॥
दूर करती है इसी जातीय भाषा की किरन।
भानु का सा है चमकता भाल का जिसके रतन ॥ ४ ॥
सूझती जिनको नहीं अपनी भलाई की गली।
पड गई है बीच में जिनके बडी ही खलबली ॥
है अनाशा रग में जिनकी सभी आशा ढली।
जिन समाजों की जडें भी हो गई हैं खोखली ॥
ढग से जातीय भाषा ही उन्हें आगे बढा।
है समुन्नति के शिखर पर सर्वदा देती चढा ॥ ५ ॥
उस स्वकीया जाति भाषा सर्वथा सुख दानि की।
परम सरला सुन्दरी आधार भूता आनि की ॥
जननि सी उपकारिका, प्रतिपालिका कुल कानि की।
उस निराली नागरी अति आगरी गुण खानि की।
आप में कितनी है ममता, दीजिये मुझ को बता ॥
आज भी क्या प्यार उससे आप सकते हैं जता ? ॥ ६ ॥
खोलकर आँखें निरखिये बग भाषा की छटा।
मरहठी की देखिये, कैसी बनी ऊँची अटा ॥
क्या लसी साहित्य नभ में गुर्जरी की है घटा।
आह ! उर्दू का है कैसा चौतरा ऊँचा पटा ॥
किन्तु हिन्दी के लिये प्यार अब भी दूर है।
आज भी [illegible] सच्चे सर हैं ॥ ७ ॥



जातीय भाषा ।

[षट्पद ।]

जातियाँ जिससे बनीं, ऊँची हुईं, फूली फली ।
अंक में जिस के बड़े ही गौरवों से हैं पलीं ॥
रत्न हो करके रहीं जो रंग में उसके ढलीं ।
राज भूलीं, पर न सेवा से कभी जिसकी टलीं ॥
ऐ हमारे बंधुओ ! जातीय भाषा है वही ।
है सुधा की धार बहु मरु भूमि में जिससे बही ॥ १ ॥
जो हुए निर्जीव हैं, उनको जिला देती है वह ।
गङ्ग-धारा कर्म्मनाशा में मिला देती है वह ॥
स्वच्छ पानी प्यास वाले को पिला देती है वह ।
जो कली कुम्हला गई उसको खिला देती है वह ॥
नीम में है दाख के गुच्छे वही देती लगा ।
ऊसरों में है रसालों को वही देती उगा ॥ २ ॥
आन में जिनकी दिखाती देस-ममता है निरी ।
जो सपूतों की न उँगली देख सकते हैं चिरी ॥
रह नहीं सकतीं सफलतायें कभी जिनसे फिरी ।
वह नई पौधें उठी हैं जातियां जिनसे गिरी ॥

थीं इसी जातीय भाषा के हिंडोले में पलीं।
फूँक से जिनकी घटायें आपदाओं की टलीं॥ ३॥
है कलह औ फूट का जिसमें फहरता फरहरा।
दंभ-उल्लू-नाद जिस में है बहुत देता डरा॥
मोह, आलस, मूढता, जिस में जमाती है परा।
वह अँधेरा देस का बहु आपदाओं से भरा॥
दूर करती है इसी जातीय भाषा की किरन।
भानु का सा है चमकता भाल का जिसके रतन॥ ४॥
सूझती जिनको नहीं अपनी भलाई की गली।
पड़ गई है बीच में जिनके बड़ी ही खलबली॥
है अनाशा रंग में जिनकी सभी आशा ढली।
जिन समाजों की जड़ें भी हो गई हैं खोखली॥
ढंग से जातीय भाषा ही उन्हें आगे बढ़ा।
है समुन्नति के शिखर पर सर्वदा देती चढ़ा॥ ५॥
उस स्वकीया जाति-भाषा सर्वथा सुख दानि की।
परम सरला सुन्दरी आधार-भूता आनि की॥
जननि सी उपकारिका, प्रतिपालिका कुल कानि की।
उस निराली नागरी अति आगरी गुण खानि की।
आप में कितनी है ममता, दीजिये मुझ को बता॥
आज भी क्या प्यार उससे आप सकते हैं जता? ॥ ६॥
खोलकर आँखें निरखिये बंग भाषा की छटा।
मरहठी की देखिये, कैसी बनी ऊँची अटा॥
क्या लसी साहित्य नभ में गुर्जरी की है घटा।
वाह! उर्दू का है कैसा चौतरा ऊँचा पटा॥
किन्तु हिन्दी के लिये ए चार अब भी दूर हैं।
आज भी इसके लिये उपजे न सच्चे सूर हैं॥ ७॥

आप सोचेंगे अगर इसको तनिक भी जी लगा।
तो समझ जाँयेंगे है अज्ञानता ने की दगा ॥ १६॥
आज दिन भी गाँव गाँवों में अँधेरा है भरा।
है वहाँ नहिं आज दिन भी ज्ञान का दीपक बरा॥
आज दिन भी मूढ़ता का है जमा वाँ पर परा।
जाति हित के रंग से कोरी वहाँ की है धरा॥
हाथ का पारस भला वह फेंक देगा क्यों नहीं।
आह! उसके दिव्य गुण को जानता है जो नहीं॥ १७॥
है नगर के वासियों में ज्ञान का अंकुर उगा।
जाति-हित में किन्तु वैसा जी नहीं अब भी लगा।
फूँक से वह आपदा है सैकड़ों देता भगा॥
जाति-भाषा रंग में नर-रत्न जो सच्चा रँगा।
उस वदन की ज्योति देती है तिमिर सारा नसा।
जाति के अनुराग का न्यारा तिलक जिसपर लसा॥ १८॥
नागरी के नेह से हम लोग आये हैं यहाँ।
किन्तु सच्चा त्याग हम में आज दिन भी है कहाँ॥
जाति सेवा के लिये हैं जन्मते त्यागी जहाँ।
आपदायें ढूँढने पर भी नहीं मिलती वहाँ॥
जाति-भाषा के लिये किस सिद्ध की धूनी जगी।
वे कहाँ हैं जिनके जी को चोट है सच्ची लगी॥ १९॥
निज धरम के रंग में डूबे, तजे निज बंधु-जन।
हैं यहाँ आते चले यूरोप के सच्चे रतन॥
किस लिये? इस हेतु, जिसमें ... निधन

जो अँधेरे में पड़ा है ज्योति में लाना उसे।
जो भटकता फिर रहा है, पथ दिखलाना उसे॥
फँस गया जो रोग में है, पथ्य बतलाना उसे।
सीखता ही जो नहीं, कर प्यार सिखलाना उसे॥
काम है उनका, जिन्हें पा पूत होती है मही।
इस विषम संसार-पादप के सुधा फल हैं वही॥ २१॥
आज का दिन है बड़ा ही दिव्य बहु रत्नों जड़ा।
जो यहाँ इतने स्वभाषा-प्रेमियों का पग पड़ा॥
किन्तु होवेगा दिवस वह और भी सुन्दर बड़ा।
लाल कोई वीर लों जिस दिन कि होवेगा खड़ा॥
दूर करने के लिये निज नागरी की कालिमा।
औ लसाने के लिये उन्नति गगन में लालिमा॥२२॥
राज महलों से गिनेगा झोंपड़ी को वह न कम।
वह फिरेगा उन थलों में है जहाँ पर घोर तम॥
जो समझते यह नहीं, है काल क्या? हैं कौन हम?
वह बतादेगा उन्हें जातीय-उन्नति के नियम॥
वह बना देगा बिगड़ती आँख को अंजन लगा।
जाति भाषा के लिये वह जाति को देगा जगा॥२३॥
वह नहीं कपड़ा रँगेगा किन्तु उर होगा रँगा।
घर न छोड़ेगा, रहेगा पर नहीं उस में पगा॥
काम में निज वह परम अनुराग से होगा लगा।
प्यार होगा सब किसी से और होगा सब सगा॥
बात में होगी सुधा उसका रहेगा पूत मन।
जाति भाषा-तेज से होगा दमकता वर बदन॥२४॥
दूर होवेगा उसी से गाँव गाँवों का तिमिर।
खुल पड़ेगी हिन्दुओं की बंद होती आँख फिर॥

तम भरे उर में जगेगी जोति भी अति ही रुचिर।
वह सुनेगी बात सब, जो जाति है कब की वधिर॥
दूर होगी नागरी के सीस की सारी बला।
चौगुनी चमकेगी उसकी चारुता मंडित कला॥२

दैनिकों के वास्ते हैं आज दिन लाले पड़े।
सैकड़ों दैनिक लिये तब लोग होवेंगे खड़े॥
केतु होंगे नागरी की कीर्ति के सुन्दर बड़े।
जगमगायेंगे विभूषण अंग में रत्नों जड़े॥
देश-भाषा रूप से वह जायगी उस दिन वरी।
सब सगी वहनें बनायेंगी उसे निज सिर धरी॥

मैं नहीं सकटेरियन हूँ और हूँ न उतावला।
बात गढ़ कर मैं किसी को चाहता हूँ कब छला॥
मैं न हूँ उरदू-विरोधी, मैं न हूँ उससे जला।
कौन हिन्दू चाहता है घोंटना उसका गला॥
निज पड़ोसी का बुरा कर कौन जग फूला फला।
हैं इसी से चाहते हम आज भी उसका भला॥२

किन्तु रह सकता नहीं यह बात बतलाये बिना।
ज्यों न जीयेगा कभी जापान जापानी बिना॥
ज्यों न जीयेगा मुसल्माँ पारसी, अरबी बिना।
जी सकोगे हिन्दुओ, यों ही न तुम हिन्दी बिना॥
देख कर उरदू कुतुब यह दीजिये मुझ को बता।
आप की जातीयता का है कहीं उस में पता?॥२

क्या गुलाबों पर करेंगे आप कमलों को निसार।
क्या करेंगे कोकिलों को छोड़ कर बुल बुल को प्यार॥
क्या रसालों को सरो शम शाद पर देवेंगे वार।
क्या लखेंगे हिन्द में ईरान का मौसिम बहार॥

क्या हिरासे और दजला आदि से होगी तरी ।
तज हिमालय सा सुगिरिवर पूत-सलिला सुरसरी ॥२६॥
भीम, अर्जुन की जगह पर गेव रुस्तम को विठा ।
सभ्य लोगों में नहीं दृग आप सकते हैं उठा ॥
साथ कैकाऊस-दारा प्रेम की गाँठें गठा ।
क्या भला होगा, रसातल भोज, विक्रम को पठा ॥
कर्ण की ऊँची जगह जो हाथ हातिम के चढ़ी ।
तो समझिये, ढह पड़ेगी आप की गौरव-गढ़ी ॥३०॥
क्या हसन की मसनवीसे आप होकर मुग्ध मन ।
फेंक देंगे हाथ से वह दिव्य रामायन रतन ॥
क्या हटाकर सूर तुलसी मुख सरोरुह से नयन ।
आप अवलोकन करेंगे मीर गालिब का वदन ॥
क्या सुधा को छोड़कर मञ्जुल-मयक-मुखी सखी ।
आप सहवा पान करके हो सकेंगे गौरवी ॥३१॥
जो नहीं, तो देखिये जातीय भाषा का वदन ।
पोंछिये, उसपर लगे हैं जो बहुत से धूलिकन ॥
जी लगाकर कीजिये उसकी भलाई का जतन ।
पूजिये उसका चरण उस पर चढा प्यारे रतन ॥
जगमगा जायेगी उसकी ज्योति से भारत धरा ।
आप का उद्यान-यश होगा फला फूला हरा ॥३२॥
भाग्य से ही राज उस सरकार का है आज दिन ।
जो उचित आशा किसी की है नहीं करती मलिन ॥
शान्त की जिसने यहां आकर अराजकता अगिन ।
उँगलियों पर जिसके सब उपकार हैं सकते न गिन ॥
जो न ऐसा राज पाकर आप सोते से जगे ।
तो कहें क्यों आप हैं रँग जाति भाषा में रँगे ॥३३॥

हे प्रभो! हिन्दू हृदय में ज्ञान का अंकुर उगे।
हिन्द में बनकर रहें, सब काल वे सबके सगे॥
दूसरों को हानि पहुँचाये बिना औ बिन ठगे।
दूर हों सब विघ्न, बाधा, भाग हिन्दी का जगे॥
जाति भाषा के लिये जो राज सुख को रज गिने।
बुद्ध शंकर-भूमि कोई लाल फिर ऐसा जने॥१४

हिन्दी भाषा।

[छप्पे]

पड़ने लगती है पियूष की शिर धारा।
हो जाता है रुचिर जोति मय लोचन-तारा॥
वर विनोद की लहर हृदय में है लहराती।
कुछ बिजली सी दौड़ सब नसों में है जाती॥
आते ही मुख पर अति सुखद जिसका पावन नाम ही।
इक्कीस-कोटि-जन-पूजिता हिन्दी भाषा है वही॥१
जिसने जग में जन्म दिया औ पोसा, पाला।
जिसने यक यक लहू बूंद में जीवन डाला॥
उस माता के शुचि मुख से जो भाषा सीखी।
उसके उर से लग जिसकी मधुराई चीखी॥
जिसके तुतला कर कथन से घर में धार सुधा बही।
क्या उस भाषा का मोह कुछ हम लोगों को है नहीं॥२
दो सूबों के भिन्न भिन्न बोली वाले जन।
जब करते हैं खिन्न बने, मुख भर अवलोकन॥
जो भाषा उस समय काम उनके है आती।
जो समस्त भारत भू में है समझी जाती॥

उस अति सरला उपयोगिनी हिन्दी भाषा के लिये।
हम में कितने हैं जिन्होंने तन मन धन अरपन किये ॥ ३ ।
गुरु गोरख ने जोग साधकर जिसे जगाया।
श्री कबीर ने जिसमें अनहद नाद सुनाया॥
प्रेम रंग में रँगी भक्ति के रस में सानी।
जिस में है श्रीगुरु नानक की पावन बानी॥
हैं जिस भाषा से ज्ञान मय आदि ग्रंथसाहब भरे।
क्या उचित नहीं है जो उसे निज सर आँखों पर धरे॥४॥
करामात जिसमें है चंद-कला दिखलाती।
जिसमें है मैथिल कोकिल काकली सुनाती॥
सूरदास ने जिसमें सरवर सुधा बनाया।
तुलसी ने जिसमें सुर-पादप फलद लगाया॥
जिसमें जग पावन पूत तम रामचरित मानस बना।
क्या परम प्रेम से चाहिये उसे न प्रति दिन पूजना ॥ ५ ॥
बहुत बड़ा, अति दिव्य, अलौकिक, परम मनोहर।
दशम ग्रंथ साहब समान वर ग्रंथ विरच कर॥
श्रीकलँगीधर ने जिसमें निज कला दिखाई।
जिसमें अपनी जगत चकित कर जोति जगाई॥
वह हिन्दी भाषा दिव्यता खनि अमूल्य मणियों भरी।
क्या हो नहिं सकती है सकल भाषाओं की सिर-धरी ॥ ६ ॥
अति अनुपम, अति दिव्य, कान्त रत्नोंकी माला।
कवि केशवने कलित कंठ में जिसके डाला॥
पुलक चढ़ाये कुसुम बड़े कमनीय मनोहर।
देव बिहारी ने जिसके युग कमल पगों पर॥
आँख खुले पर वह भला लगेगी न प्यारी किसे।
जग मगा रही है जो किसी भारतेन्दु की जोति से ॥ ७ ॥

वैष्णव कवि-कुल-मुख-प्रसूत आमोद-विधाता ।
जिस में है अति सरस स्वर्ग संगीत सुनाता ॥
भरा देशहित से था जिसके कर का तूँबा ।
गिरी जाति के नयन सलिल में था जो डूबा ॥
वह दयानन्द नव-युग-जनक जिसका उन्नायक रहा ।
उस भाषा का गौरव कभी क्या जा सकता है कहा ॥८॥
महाराज रघुराज राज-विभवों में रहते ।
थे जिसके अनुराग तरंगों ही में बहते ॥
राजविभव पर लात मार हो परम उदासी ।
थे जिसके नागरी दास एकान्त उपासी ॥
वह हिन्दी भाषा बहु नृपति-वृन्द-पूजिता वंदिता ।
कर सकती है उन्नत किये वसुधा को आनंदिता ॥९॥
वे भी हैं, है जिन्हें मोह, हैं तन मन अर्पक ।
हैं सर आँखों पर रखने वाले, हैं पूजक ॥
है वक्ता वादी, गौरव-विद, उन्नति कारी ।
वे भी हैं जिनको हिन्दी लगती है प्यारी ॥
पर कितने हैं, वे हैं कहाँ जिनको जी से है लगी ।
हिन्दू जनता नहिं आज भी हिन्दी के रँग में रँगी ॥१०॥
एक बार नहिं बीस बार हमने हैं जोड़े ।
पहले तो हिन्दू पढ़ने वाले हैं थोड़े ॥
पढ़ने वालों में हैं कितने उर्दू-सेवी ।
कितनों की हैं परम फलद अंग्रेजी देवी ॥
कहते रुक जाता कंठ है नहिं बोला जाता यहाँ ।
निज आँख उठाकर देखिये हिन्दी-प्रेमी हैं कहाँ ? ॥११॥
अपनी आँखें बन्द नहीं मैंने कर ली हैं ।
वे कन्दीलें लखीं जो तिमिर बीच बली हैं ॥

है हिन्दी आलोक पडा पजाव-धरा पर।
उससे उज्वल हुआ राज्य इन्दौर, ग्वालिअर॥
आलोकित उससे हो चली राज-स्थान-वसुधरा।
उसका बिहार में देखता हूँ फहराता फरहरा॥१२॥
मध्य हिन्द में भी है हिन्दी पूजी जाती।
उसकी है बुन्देल-खड में प्रभा दिखाती॥
वे माई के लाल नहीं मुझ को भूले हैं।
सूखे सर में जो सरोज के से फूले हैं॥
कितनी ही आँखें हैं लगी जिन पर आकुलता-सहित।
है जिनके सौरभ रुचिर से सब हिन्दी-जग सौरभित॥१३॥
है हिन्दी साहित्य समुन्नत होता जाता।
है उसका नूतन विभाग भी सुफल फलाता॥
निकल नवल सम्वाद पत्र चित हैं उमगाते।
नव नव मासिक मेगजीन हैं मुग्ध बनाते॥
कुछ जगह न्याय प्रियतादि भी खुलकर हिन्दी हित लड़ीं।
कुछ अन्य प्रान्त के सुजन की आँखें भी उस पर पड़ीं॥१४
किन्तु कहूँगा अब तक काम हुआ है जितना।
वह है किसी सरोवर के कुछ बूँदों इतना॥
जो थाला, कल्पना नयन सामने खडी है।
अब तक तो उसकी केवल नींव ही पडी है॥
अब तक उसका कलका कढा लघुतम अकुर ही पला।
हम हैं विलोकना चाहते जिस तरु को फूला फला॥१५॥
बहुत बडा पजाब औ यहा का हिन्दू-दल।
है पकडे चल रहा आज भी उरदू आँचल॥
गति,मति उसकी वही जीवनाधार वही है।
उसके उर-तन्त्री का ध्वनि मय तार वही है॥

वह रीझ रीझ उसके वदन की है कान्ति विलोकता।
फूटी आँखों से भी नहीं हिन्दी को अवलोकता ॥
　　मुख से है जातीय मधुर राग सुनाता।
　　पर वह है सोहराव और रुस्तम गुण गाता ॥
　　उमग उमग है देश-प्रेमकी बातें करता।
　　पर पारस के गुल बुल बुल का है दम भरता।
हम कैसे कहें उसे नहीं हिन्दू-हित की लौ लगी।
पर विजातीयता-रंग में है उसकी निजता रँगी ॥
　　भाषा द्वारा ही विचार हैं उर में आते।
　　वे ही हैं नव नव भावों की नींव जमाते ॥
　　जिस भाषा में विजातीय भाव ही भरे हैं।
　　उसमें फँस जातीय भाव कब रहे हरे हैं ॥
है विजातीय भाव ही का हरा भरा पादप जहाँ।
जातीय भाव अंकुरित हो कैसे उलहेगा वहाँ ॥
　　इन सूबों में ऐसे हिन्दू भी अवलोके।
　　जिनकी रुचि प्रतिकूल नहीं रुकती है रोके ॥
　　वे होमर, इलियड का पद्य समूह पढ़ेंगे।
　　टेनिसन की कविता कहने में उमग बढ़ेंगे ॥
पर जिसमें धारायें विमल हिन्दू-जीवन की वहीं।
वह कविता तुलसी सूर की मुख पर आती तक नहीं ॥१
　　मैं पर-भाषा पढ़ने का हूँ नहीं विरोधी।
　　चाहिये हो मति निज भाषा भावुकता शोधी ॥
　　जहाँ विलसती हो निज भाषा-रुचि हरियाली।
　　वहीं खिलेगी पर-भाषा-प्रियता कुछ लाली ॥
जातीय भाव बहु सुमन-मय है वर उर उपवन वही।
हों विजातीय कुछ भाव के जिसमें कतिपय कुसुम ही ॥२

हे उसके जातीय भाव को वही जगाती।
निज गौरव-ममता-अंकुर है वही उगाती॥
नस नसमें है नई जीवनी शक्ति उभरती।
उस से ही है लहू बूँद में बिजली भरती॥
कुम्हलाती उन्नति-लता को सींच सींच है पालती।
है जीव जाति निर्जीव में निज भाषा ही डालती॥२१॥
उस में ही है जड़ी जाति रोगों की मिलती।
उस से ही है रुचिर चाँदनी तम में खिलती॥
उस में ही है विपुल पूर्वतन-बुध-जन-सचित।
रत्न-राजि कमनीय जाति-गत भावों अंकित॥
कब निज पद पाता है मनुज निजता पहचाने बिना।
नहिं जाती जड़ता जाति की निज भाषा जाने बिना॥२२॥
गाकर जिनका चरित जाति है जीवन पाती।
है जिनका इतिहास जाति की प्यारी थाती॥
जिनका पूत प्रसंग जाति-हित का है पाता।
जिनका वर गुण वीरतादि है गौरव दाता॥
उनकी सुमूर्ति महिमामयी वदनीय बिरदावली।
निज भाषा ही के अंक में अंकित आती है चली॥२३॥
उस निज भाषा परम फलद की ममता तज कर।
रह सकती है कौन जाति जीती धरती पर॥
देखी गई न जाति लता वह पुलकित किंचित।
जो निज-भाषा प्रेम-सलिल से हुई न सिंचित॥
कैसे निज सोये भाग को कोई सकता है जगा।
जो निज भाषा अनुराग का अंकुर नहिं उर में उगा॥२४॥
हे प्रभु अपना प्रकृत रूप सब ही पहचाने।
निज गौरव जातीय भाव को सब सनमाने॥

तम में डूबा उर भी आभा न्यारी पावे।
खुलें बन्द आँखें औ भूला पथ पर आवे॥
निज भाषा के अनुराग की वीणा घर घर में बजे।
जीवन कामुक जन सब तजे पर न कभी निजता तजे॥

उद्बोधन।

[द्विपद]

सज्जनो! देखिये, निज काम बनाना होगा।
जाति-भाषा के लिये योग कमाना होगा॥ १॥
सामने आके उमग करके बडे वीरों लों।
मान हिन्दी का बढा आन निभाना होगा॥ २॥
सैकडों लाखों ही कठिनाइयाँ करेंगी क्या।
फूँक से हमको बलाओं को उडाना होगा॥ ३॥
सामने आये हमारे जो रुकावट का पहाड।
खोदकर उसको भी मिट्टी में मिलाना होगा॥ ४॥
उलझनों का जलनिधि राह में पडे तो क्या।
तेज कुंभज सा हमें काम में लाना होगा॥ ५॥
मेंहदियों की तरह पिस जाँय भले ही लेकिन।
रंग अपना तो हमें खुल के दिखाना होगा॥ ६॥
क्यों न इस राह में नुच जाँय या कुचल जावें।
दूब की भाँति पनप करके जम आना होगा॥ ७॥
जो इसी धुन में ही मिल जाँय कभी मिट्टी में।
उग के बीजों की तरह सरको उठाना होगा॥ ८॥
भगवे कपडों से नहीं काम चलेगा प्यारे।
हिन्दी हित रग में कपड़े को रँगाना होगा॥ ९॥

स्वर्ग औ मुक्ति के झगडों से किनारे रह कर।
हिन्दी-सेवा ही में सब जन्म बिताना होगा ॥१०॥
निज नई पौध की उरभूमि में परम रुचि से।
हिन्दी अनुराग का वर वृक्ष लगाना होगा ॥११॥
जिन उरों में है घिरा पर-भाषा-ममता-तम।
दीप वाँ नागरी-प्रियता का जलाना होगा ॥१२॥
यत्न से, युक्ति स निज स्नेह-मयी हिन्दी को।
गोद में ऐसे ही नृप-मणि के बिठाना होगा ॥१३॥
फिर विनत होके सअनुराग पडेगा कहना।
जाति भाषा का प्रभो! मान बढ़ाना होगा ॥१४॥
सोचकर चाव-सहित ऐसे ही सुअवसर पर।
उसकी सत्कीर्त्ति का कल पुष्प खिलाना होगा ॥१५॥
ऐसा कर करके सदा आप फले, फूलेंगे।
ईश की होगी दया, जग में ठिकाना होगा ॥१६॥

अभिनव कला।

[षट् पद]

प्यार के साथ सुधाधार पिलाने वाली।
जो कली भाव विविध सग खिलाने वाली॥
नागरो बेलि नवल सींच जिलाने वाली।
नीरसों मध्य सरसतादि मिलाने वाली॥
देख लो फिर उगी साहित्य-गगन पर उजला।
अति कलित कान्तिमती चारु हरीचन्द कला॥ १॥
जो रहा मंजु मधुप नागरी-कमल पग का।
जो रहा मत्त पथिक प्रेम के रुचिर मग का॥
जो रहा बन्धु सदय भाव-सहित सब जग का।
जो रहा रक्त गरम जाति की नियल रग का॥

थी जिसे बुद्धि मिली पूत रसिकतादि वलित।
है उसी उक्ति सरसि कंज की यह कीर्ति कलित ॥२॥
देखिये आप इसे प्यार भरी आँखों से।
दीजिये मान दिला आप इसे लाखों से ॥
आप पावेंगे इसे मिष्ट अधिक दाखों से।
आप देखेंगे दमकता इसे सित पाखों से ॥
यह लसायेगी उरों बीच सुधा-पूरित सर।
यह सुनायेगी सअनुराग अलौकिक पिक-स्वर ॥३॥
है जिसे सूझ मिली कान्ति मनोहर प्यारी।
पा गया जो है बड़े पुण्य से प्रतिभा न्यारी ॥
कैसा होता है कथन उसका मधुर रुचि-कारी।
कितनी होती है खिली उसकी सुकविता-क्यारी॥
जानना चाहें अगर यह रहस्य पुलकित कर।
तो पढ़ें आप इसे कजकरों में लेकर ॥४॥
स्वर्ग-संगीत सरस आठ पहर है होता।
इस में बहता है महा-मोद का सुन्दर सोता ॥
बीज हितकारिता इसका है वर वरन बोता।
ताप जीका है मधुर बोलना इसका खोता ॥
चौगुनी चाप पुरन्दर से हुई जिसकी छटा।
इस में दिखलायेगी यह मुग्धकरी कान्त घटा ॥५॥
खींच देवेगी रुचिर चित्र यह दृगों आगे।
आर्य्य-गौरव का, अमर वृन्द जिसमें अनुरागे ॥
छू जिसे कान्ति सने बादले बने धागे।
तेज से जिसके तिमिर देस देस के भागे ॥
ज्योति वह जिसके विमल अंक से उफन निकली।
कान्त कंदील जगत सभ्यता की जिससे बली ॥६॥

यह सुना जाति-व्यथा आप को जगा देगी।
देश हित-बीज हृदय-भूमि में उगा देगी॥
धर्म्म का मर्म्म बता मूढ़ता भगा देगी।
लोक सेवा में बड़े प्यार से लगा देगी॥
यह मलिन बुद्धि, परम पूत बना लेवेगी।
बन्द होती हुई उर आँख खोल देवेगी॥७॥
कण्टकों-मध्य खिला फूल है चुना जाता।
कीच के बीच पड़ा रत्न है उठा आता॥
बाहरी रूप जो इसका न भव्य दिखलाता।
था उचित तो भी इसे यह प्रदेश अपनाता॥
किन्तु यह आज बदल रंग रूप आई है।
मान अब भी न मिले तो बड़ी कचाई है॥८॥
आज जो बंग-धरा-बीच जन्म यह पाती।
मरहठी गुर्जरी भाषा में जो लिखी जाती॥
मान पा हाथ में लाखों जनों के दिखलाती।
बन गयी होती विबुध-वृन्दकी प्यारी थाती॥
लोग कर ब्योंत बड़े चाव से इसे लेते।
बात ही में नहीं जी में इसे जगह देते॥९॥
जो कहीं भूल गया नागरी परम नेही।
प्रेम हिन्दी न हुआ तो वृथा बने देही॥
त्याग स्वीकार करें या बने रहें गेही।
जाति ममता है जिन्हें धन्य हैं यहाँ वेही॥
वर, विभव, मान, विमल कीर्ति वही पावेंगे।
जाति भाषा को ललक जो गले लगावेंगे॥१०॥



प्रबोध पंचक ।

[पद]

जी लगा पोथी अपनी पढो ।
केवल पढो न पोथी ही को, मेरे प्यारे कढो ।
कभी कुपथ में पॉव न डालो, सुपथ ओर ही बढो ॥
भावों की ऊँची चोटी पर बडे चाव से चढो ।
सुमति-रुजरी को मानवता-रुचिर-चामसे मढो ॥
वर सोनार लौं परम मनोहर पर-हित गहने गढो ॥ १ ॥
बडा ही जी को है दुख होता ।
कोई जो रसाल-क्यारी में है बबूल को बोता ।
लसता है सुन्दर भावों-सॅग उर में रसका सोता ॥
बुरे भाव उपजा कर उसमें मूढ मूल है खोता ॥ २ ॥
स्वाति की बूँद जहाँ जा पडी ।
बहुत काम आई, दिखलाई उपकारिता बडी ।
बनी कपूर कदलि-गोफो में सीपी में कल मोती ॥
खोले मुख प्यासे चातक-हितवनी सुधाकी सोती ।
ऐसे ही तुम जहां सिधाओ उपकारक बन जाओ ॥
कॉटों में भी बडे अनूठे सुन्दर फूल खिलाओ ॥ ३ ॥

आहा! कितना है मन भाता।
चारों ओर जलधि प्रभु की महिमा का है लहराता।
भरे पड़े है इसमें सुन्दर, सुन्दर रतन अनेको॥
बड़े भाग वाला वह जन है जिसने पाया एको।
शंकर कपिल शुकादिक के कर एक आध था आया॥
तो भी उसने ही आलोकित भूतल सकल बनाया।
ऐसा बड़े भाग वाला जन तुम भी बनना चाहो॥
जी में जो अनुराग तनिक भी जग-जन के हितका हो॥४॥
नई पौधों से ही है आस।
जाति जिलाने वाली, जड़ी सजीवन है इनही के पास।
इनके बने जाति बनती है विगड़े हो जाती है नास॥
इनही से जातीय भाव का होता है विधि साथ विकास।
येहे जाति-समाज देहके वसन-विधायक कुसुम कपास।
येई हैं नूतन विचार उडु राजि विकाशक विमल अकास॥
उन्हीं नई पौधों में तुम हो, देखो होय न हृदय निरास।
गौरव लाभ करो फैला कर तम में अति कमनीय उजास॥५॥

भोर का उठना।

[पद]

भोर का उठना है उपकारी।
जीवन तरु जिससे पाता है हरियाली, अति प्यारी॥
पा अनुपम पानिप तन बनता है बल-सचय-कारी।
पुलकित, कुसुमित, सुरभित, हो जाती है जन-उर-क्यारी॥
लालिमा ज्यों नभ में छाती है।
त्यों ही एक अनूठी धारा अवनी पर आती है॥

परम-रुचिरता-सहित सुधा-बूँदों सी बरसाती है।
रसमय, मुदमय, मधुर स्वरों-मय सब दिशा बनाती है॥
तृण, वीरुध, तरु, लता, वेलिको प्रतिपल पुलकाती है।
वन उपवन में रुचिर मनोहर कुसुम-चय खिलाती है॥
प्रान्तर-नगर-ग्राम-गृह-पुर में सजीवता लाती है।
उमग उरों तन पुलक जोति नव दृगमें उपजाती है॥
सदा भोर उठने वालों की यह प्यारी थाती है।
यह न्यारी निधि बड़े भाग वाली जनता पाती है॥

प्रात की किरनें कोमल प्यारी।
जहाँ तहाँ फलती तरु तरु पर दिखलाती छवि न्यारी॥
जब आलोकित करती है अवनी कर प्रकृति सँवारी।
तब युग नयन देख पाते हैं देव-कुसुम फल-न्यारी॥
जीवन लहर जगमगा जाती है पा द्युति रुचिकारी।
उर नभ विभावान बनता है जैसे रजनि दिवारी॥

प्रात-पवन है परम निराली।
तन निरोग करने वाली ओषध उसमें है डाली॥
उसकी अति रुचिकर शीतलता चाल मृदुलता ढाली।
कुसुम कली लौं है जी की भी कली खिलाने वाली॥
होती हैं जनता मलयानिल सौरभ से मतवाली।
किन्तु सामने यह रस देती है फूलों की डाली॥
प्रात-पवन ही से मिलती है प्रीतिकरी मुखलाली।
उसके सेवन से बढ़ती है जीवन-तरु-हरियाली॥

प्रात उठने में कभी न चूको।
अभिनव-किरण-जाल-आरंजित नित अवलोको भू को॥
दूध-फेन-सम सुकुसुम कोमल तल्प है परम प्यारा।
किन्तु कहीं उससे सुखकर है ऊषा कालिक धारा॥

प्रात-समय की सहज नींद है बहु विनोदिनी मीठी।
किन्तु पास है प्रात पवन के अति प्रियता की चीठी॥
करो निछावर आलस को उस पर कर पुलकित छाती।
प्रात अटन से जो सजीवता है धमनी में आती॥
काम काज की विविध असुविधा जीवन की बहु बाधा।
एक प्रात उठने ही से कम हो जाती है आधा॥
बालक युवा सभी पाते हैं उससे सदा सफलता।
सबके लिये प्रात का उठना है अमृत फल फलता॥

अविनय।

[छप्प]

ढाल पसीना जिसे बड़े प्यारों से पाला।
जिसके तन में सींच सींच जीवन रस डाला॥
सुअंकुरित अवलोक जिसे फूला न समाया।
पा करके पल्लवित जिसे पुलकित हो आया॥
वह पौधा यदि न सुफल फले तो कदापि न कुफल फले।
अवलोक निराशा का वदन नीर न आँखों से ढले॥१॥
बालक ही है देश-जाति का सच्चा सबल।
वही जाति-जीवन-तरु का है परम मधुर फल॥
छात्र-रूप में वही रुचिर रुचि है अपनाता।
युवक-रूप में वही जाति हित का है पाता॥
वह पूत पालने में पला विद्या सदनों में बना।
उज्वल करता है जाति मुख कर लोकोत्तर साधना॥२॥
बालक ही का सहज-भाव-मय मुखड़ा प्यारा।
है सारे जातीय-भाव का परम सहारा॥

युवक जनों के शील आत्म-संयम शुच रुचि पर ।
होती हैं जातीय सकल आशायें निर्भर ॥
इनके बनने से जातियाँ बनीं देश फूला फला ।
इनके बिगड़े बिगड़ा सभी हुआ न हरि का भी भला ॥
इन बातों को सोच आँख रख इन बातों पर ।
पाठालय स्कूल कालिजों में जा जा कर ॥
जब मैंने निज युवक और बालक अवलोके ।
तो जी का दुख-वेग नहीं रुकता था रोके ॥
नस नस में कितनों की भरा वह अविनय मुझको मिला ।
जिसको विलोक कर सुजनता मुख-सरोज न कभी खिला ॥
विनय करों में सकल सफलता की है ताली ।
विनय पुट बिना नहिं रहती मुखड़े की लाली ॥
विनय कुलिश को भी है कुसुम समान बनाता ।
पाहन जैसे उर को भी है वह पिघलाता ॥
निज कल करतूतें कर विनय होता है वाँ भी सफल ।
बन जाती है बुधि बल-सहित जहाँ वचन-रचना विफल ॥
किन्तु हमारी नई पौध उससे बिगड़ी है ।
उस पर उसकी उचित आँख अब भी न पड़ी है ॥
वह गिनती है उसे आत्म-गौरव का बाधक ।
चित की कुछ बलहीन वृत्तियों का आराधक ॥
वह निज विचार तज कर नहीं शिष्टाचार नि
जो कुछ कहता है चित्त वह वही किया है
अनुभव वह संसार का तनिक भी नहिं
तह तक उसकी आँख आज भी नहीं
पके नहीं कोई विचार, हैं सभी
पढ़ने के दिन हुए नहीं अब त

पर तो भी वह है बड़ों से बात बात में अकड़ती।
पथ चरम पथियों का पकड़ है कर से अहि पकड़ती॥७॥
बहुत बड़ा अनुभवी राज-नीतिक-अधिकारी।
जाति-देश का उपकारक सच्चा हितकारी॥
उसकी रुचि-प्रतिकूल बोल कब हुआ न वञ्चित।
कह कर बातें उचित मान पा सका न किंचित॥
वह पीट पीट कर तालियाँ उसे बनाती है विवश।
या 'बैठ जाय' की ध्वनि उठा हर लेती है विमल यश॥८॥
उसके इस अविवेक और अविनय के द्वारा।
क्यों न लोप हो जाय देश का गौरव सारा॥
कोई उन्नत हृदय क्यों न सो टुकड़े होवे।
क्यों न जाति आमूल सफलता अपनी खोवे॥
रह जाय देश हित के लिये नहीं ठिकाना भी कहीं।
पर उसके कानों पर कभी जूँ तक रेंगेगी नहीं॥९॥
पिटी तालियों में पड़ देश रसातल जावे।
धूम धाम 'गो आन' धाक जातीय नसावे॥
'हिअर हिअर' रव तले पिसें सारी सुविधायें।
आशाओं का लहू अकाल उमग बहायें॥
यह देख देश हित-रत सुजन क्यों न कलेजा थाम ले।
पर भला उसे क्या पड़ी है जो अनुभव से काम ले॥१०॥
जिनके रज औ बीज से उपज जीवन पाया।
पली गोद में जिनकी सोने की सी काया॥
उनकी रुचि भी नहीं स्वरुचि-प्रतिकूल सुहाती।
वरन कभी आवेग-सहित है कुचली जाती॥
अभिरुचि प्रतिकूल विचार भी ठोकर खाते ही रहें।
उनके सनेहमय मृदुल उर क्यों न बुरी ठेसें सहें॥११॥

पर उसका अपराध नहीं इसमें है इतना ।
हम लोगों का दोष इस विषय में है जितना ॥
जैसे साँचे में हमने उसको है ढाला ।
जैसे ढँग से हमने उसको पोसा पाला ॥
लीं साँसें जैसी वायु में वह वैसी ही है बनी ।
कैसे तप ऋतु हो सकेगी शरद्-समान सुहावनी ॥१२

आत्मत्याग है कहीं आत्मगौरव से गुरुतर ।
निज विचार से उचित विचार बहुत है बढकर ॥
कर निज-चित-अनुकूल न मन गुरुजन का रखना ।
सुधा पग तले डाल ईख का रस है चखना ॥
अनुभवी लोक-हित-निरत की विबुधों की अवमानना ।
है विमल जाति-हित सुरुचि को कुरुचि-कीच में सानना ॥१३॥

किन्तु जब नहीं उसने इन बातों को जाना ।
यदि जाना तो उसे नहीं जी से सनमाना ॥
किसी भाँति जब अविनय ने ही आदर पाया ।
तब वह कैसे नहीं करेगी निज मन भाया ॥
यह रोग बहुत कुछ है बना हो हिन्दू रुचि से निबल ।
पर यदि न आँख अब भी खुली दिन दिन होवेगा सबल ॥१४॥

प्रभो ! हमारी नई पौध निजता पहचाने ।
अपने कुल-मरजाद जाति-गौरव को जाने ॥
चुन लेने के लिये, विनय-रुचिकर-रस चीखे ।
सबका सदा यथोचित-आदर करना सीखे ॥
धारा उसकी धमनियों में पूत जाति हित की बहे ।
पर गुरुजन के अनुराग का रुचिर रंग उस में रहे ॥१५॥



दशहरा ।

[द्रुत विलम्बित ।]

वर वितान तले नभ नील के ।
सितप्रभा-रजनीपति-रंजिता ॥
विकसिता, अति निर्मलता मयी ।
दश दिशा नव-अङ्क-उमङ्गिता ॥ १ ॥
मृदुल शीतल मञ्जुल वायु से ।
प्रति घटी पल भूरि विनोदिता ॥
कल-कलोल विहग-वरूथ से ।
पुलकिता कमनीय कलोलिता ॥ २ ॥
अति मनोरम सौरभ में सने ।
हरसिंगार--प्रसून--सुगंधिता ॥
सु विकसे बहु-पुष्प-समूह से ।
अति-अनूपमता-सँग सज्जिता ॥ ३ ॥
विविध कौतुक-केलि-कलावती ।
मुद-निकेत-महोत्सव-मोदिता ॥
बहु-विनोद-पगी जनतामयी ।
रमणि-कान्त-अलाप-विभूषिता ॥ ४ ॥

अतुल मंजुल भाव-विबोधिनी ।
अति अलौकिक-गौरव-अंकिता ॥
दशहरा अवनीतल में लसी ।
सरसता-शुचिता-समलंकृता ॥ ५ ॥

होली ।

[षट्पद ।]

चाव में डूबे उमगों में भरे भावों-ढले ।
गान के घर गौरवों की भूवना अपने गले ॥
कौतुकों की मूर्तियाँ बनकर वितानों के तले ।
भूति न्यारी भावुकों की भाल पर अपने मले ॥
जो परब त्यौहार अपने हैं मनाते हो मगन ।
हैं बड़े वे भाग वाले हैं धरा वे धन्य जन ॥ १ ॥
हैं उठाते देश-नभ के अंक में आनन्द-घन ।
वे प्रफुल्लित हैं बनाते जाति-जीवन का बदन ॥
हैं खिलाते वे परस्पर प्यार के सुन्दर सुमन ।
है दिखाते खोल कर वे सभ्यता-सचित रतन ॥
है बड़ी ही बुद्धि से त्यौहार वसुधा में रचित ।
चारुता से वे विभव जातीय करते हैं विदित ॥ २ ॥
जब सजा नव पल्लवों के पुंज से विटपावली ।
जब रसालों में लसा कर मंजरी सोने-ढली ॥
जब बना छोटी बड़ी सब डालियाँ फूली फली ।
हाथ में जब ले अनूठे रंग की नाना कली ॥
विहँसता ऋतुराज आता है महा मोदों सना ।
रंजिता, आमोदिता, आनन्दिता, वसुधा बना ॥ ३ ॥

मत्त हो होकर निकुंजों गूँजता है जब भ्रमर।
है सुनाती कूक कर जब कोकिला स्वर्गीय स्वर॥
घोल करके बोलियाँ मीठी रसीली मुग्ध कर।
जब विहग-गण हैं दिशाओं को बनाते मंजु तर॥
जब मलय-मारुत बड़ी ही चारुता के साथ चल।
है बहा देता उरों में मत्तता-धारा प्रबल॥ ४॥
देख करके खेत को अपने सुअन्नों से भरा।
जब किसानों का हृदय-तल है बहुत होता हरा॥
की गई थी जो कमाई पत्थरों का पी घरा।
जब सुफल उसका उन्हें है मुग्ध हो देती धरा॥
झोंपड़ी से राज-भवनों तक सुआशायें फला।
है विलसती दीपती सम्पन्नता की जब कला॥ ५॥
तब उठेगी क्यों नहीं उर में विनोदों की लहर।
क्यों न आवेगा रुधिर में प्राणियों के ओज भर॥
रंग लावेंगीं उमंगें क्यों नहीं बन चारु तर।
चौगुना हो चाव चित्तों में करेगा क्यों न घर॥
फल-स्वरूप इन्हीं सबों का पर्व होली है बना।
जो बड़ा ही है अनूठा मुग्ध कर मन-भावना॥ ६॥
जिस दिवस को गात छू प्रहलाद का पावन परम।
होलिका का अंक पावक में हुआ था पुष्प सम॥
है यही फागुन सुदी पूनो, दिवस वह मंजु तम।
है इसी से हो गया त्योहार यह अधिकानुपम॥
जिस दिवस को पुण्य-जन की धाक वसुधा में रही।
जाति जीती उस दिवस को मान देगी क्यों नहीं॥ ७॥
धान्य कटने के समय सब देश का है यह चलन।
लोग करते हैं विविध उत्सव बना उत्फुल्ल मन॥

मान देते हैं बरस के आदि दिन को सर्व जन।
 है हुआ इस सूत्र से भी पर्व होली का सृजन॥
हैं बड़े उत्साह से उसको मनाते निम्न जन।
 हैं उसे कहते इसी से पर्व उनका विज्ञ-गन ॥ ८॥
वृद्धि पाती है शिथिलता शीत की जब नित्य प्रति।
 पेड़ तक को है सरस करती किरण जब वार-पति॥
तब इधर है ओजमय होता रुधिर हो क्षिप्र-गति।
 व्याधियाँ उत्पन्न होकर हैं उधर लाती विपति॥
है इसी से यह व्यवस्था लोग हों उत्सव निरत।
 चित रखें उत्फुल्ल, पेन्हें वर वसन हों मोद-रत॥ ६॥
यह बड़ा ही भावमय त्यौहार है जैसा मधुर।
 वैसेही है देश-व्यापी औ विमोहक लोक-उर॥
दीखती है इस परब में मत्तता इतनी प्रचुर।
 है उमग पड़ता परम उस से नगर, गृह, ग्राम, पुर॥
इन दिनों उठती है उस आनन्द की उर में लहर।
 रंजिशें जो है बरस दिन की मिटाती अंक भर॥ १०॥
आज दिन रोते हुओं को लोग देते हैं हँसा।
 मोद देते हैं व्यथा मय मानसों में भी लसा॥
जिन कुचालों में समाज विमोह-वश है जा फँसा।
 है विमूढ़ों को जगा देते उन्हें आँखों-बसा॥
स्वांग लाकर सैकड़ों नाना स्वरूपों 'को बना।
 भाव मय गीतादि से जातीय-दोषों को जना॥ ११॥
डाल कर रँग रंग देते हैं न केवल तन वसन।
 है डुबा देते परम अनुराग में भी मत्त मन॥
कुमकुमों को मार मञ्जु गुलाल को मलकर वदन।
 है सुरंजित सा बनाते भव्य-भावुकता-भवन॥

जा घरों पर स्वा खिला आमोद से मिलकर गले।
मुग्ध होते हैं परम पा प्रेम के पादप फले ॥ १२ ॥
इन दिनों जैसा गमकता है मुरज, बजता पनव।
वेणु, वीणा आदि जैसा हैं सुनाते मंजु रव ॥
कंठ जैसा है दिखाता ओज, पा माधुर्य नव।
है स्वरों जैसा विलसता चारुतर सारस्य जव ॥
साल भर ऐसा मनोहर रंग दरसाता नहीं।
है गगन रस सा बरसता, मोद सरसाती मही ॥ १३ ॥
हैं सरस होती रसीले कंठ से सड़कें सकल।
चौहटों चौपाल में है नित्य होता गान कल ॥
है गली कूँचों विचरता गायकों का मस्त दल।
झोपड़े होते ध्वनित हैं, गूंज उठते हैं महल ॥
स्वर सरसता है बड़ी सुकुमारता से सब समय।
पेड़ तक की डालियाँ होती हैं मंजुल-नाद-मय ॥ १४
अंग, बंग, कलिंग होते हैं प्रमोदों में निरत।
नाच उठता है सकल पंजाब हो आमोद रत ॥
यह हमारा युक्त प्रान्त प्रमत्त होता है महत।
है मनाता मोद राजस्थान हो उन्मत्तवत ॥
डूब जाती है विनोदों बीच भारत की धरा।
व्रज उमग पड़ता है, हो जाता है हरियाना हरा ॥ १५ ॥
काल पाकर यह रुचिर त्योहार भी कलुषित हुआ।
कस्बियों का नाचना, गाना अधिक प्रचलित हुआ ॥
गालियाँ बकना बहकना मद्यपान विहित हुआ।
डाल देना कीच, कालिख पोतना, समुचित हुआ ॥
ओज औ माधुर्य में बीभत्स आकरके मिला।
पाटलों के पुंज-बीच प्रसून बिम्बा का खिला ॥ १६ ॥

मान देते हैं बरस के आदि दिन को सर्व जन ।
है हुआ इस सूत्र से भी पर्व होली का सृजन ॥
हैं बड़े उत्साह से उसको मनाते निम्न जन ।
हैं उसे कहते इसी से पर्व उनका विज्ञ-गन ॥ ८ ॥
वृद्धि पाती है शिथिलता शीत की जब नित्य प्रति ।
पेड़ तक को है सरस करती किरण जब वार-पति ॥
तब इधर है ओजमय होता रुधिर हो चिप्र-गति ।
व्याधियाँ उत्पन्न होकर हैं उधर लाती विपति ॥
है इसी से यह व्यवस्था लोग हों उत्सव निरत ।
चित रखें उत्फुल्ल, पेन्हें वर वसन हों मोद-रत ॥ ९ ॥
यह बड़ा ही भावमय त्यौहार है जैसा मधुर ।
वैसेही है देश-व्यापी औ विमोहक लोक-उर ॥
दीखती है इस परब में मत्तता इतनी प्रचुर ।
है उमग पड़ता परम उस से नगर, गृह, ग्राम, पुर ॥
इन दिनों उठती है उस आनन्द कीउर में लहर ।
रजिशें जो है बरस दिन की मिटाती अक भर ॥ १० ॥
आज दिन रोते हुओं को लोग देते हैं हँसा ।
मोद देते हैं व्यथा मय मानसों में भी लसा ॥
जिन कुचालों में समाज विमोह-वश है जा फँसा ।
हैं विमूढ़ों को जगा देते उन्हें आँखों-वसा ॥
स्वाग लाकर सैकड़ों नाना स्वरूपों को बना ।
भाव मय गीतादि से जातीय-दोषों को जना ॥ ११ ॥
डाल कर रँग रग देते हैं न केवल तन वसन ।
हैं डुबा देते परम अनुराग में भी मत्त मन ॥
कुमकुमों को मार मञ्जु गुलाल को मलकर बदन ।
हैं सुरजित सा बनाते भव्य-भावुकता-भवन ॥

जा घरों पर खा खिला आमोद से मिलकर गले।
मुग्ध होते हैं परम पा प्रेम के पादप फले ॥ १२ ॥
इन दिनों जैसा गमकता है मुरज, बजता पनव।
वेणु, वीणा आदि जैसा हैं सुनाते मञ्जु रव ॥
कंठ जैसा है दिखाता ओज, पा माधुर्य्य नव।
है स्वरों जैसा विलसता चारुतर सारस्य जब ॥
साल भर ऐसा मनोहर रंग दरसाता नहीं।
है गगन रस सा बरसता, मोद सरसाती मही ॥ १३ ॥
है सरव होती रसीले कंठ से सड़कें सकल।
चौहदों चौपाल में है नित्य होता गान कल ॥
है गली कूचों विचरता गायकों का मत्त दल।
झोपड़े होते ध्वनित हैं, गूंज उठते हैं महल ॥
स्वर सरसता है बड़ी सुकुमारता से सब समय।
पेड़ तक की डालियाँ होती हैं मञ्जुल-नाद-मय ॥ १४
अंग, बंग, कलिंग होते हैं प्रमोदों में निरत।
नाच उठता है सकल पंजाब हो आमोद रत ॥
यह हमारा युक्त प्रान्त प्रमत्त होता है महत।
है मनाता मोद राजस्थान हो उन्मत्तवत ॥
डूब जाती है विनोदों बीच भारत की धरा।
ब्रज उमग पड़ता है, हो जाता हे हरियाना हरा ॥ १५ ॥
काल पाकर यह रुचिर त्यौहार भी कलुषित हुआ।
कसबियों का नाचना, गाना अधिक प्रचलित हुआ ॥
गालियाँ बकना बहकना मद्यपान विहित हुआ।
डाल देना कीच, कालिख पोतना, समुचित हुआ ॥
ओज औ माधुर्य्य में वीभत्स आकरके मिला।
पाटलों के पुंज-बीच प्रसून बिम्बा का खिला ॥ १६ ॥

किन्तु इस त्यौहार में तो भी दिखाती थी झलक ।
उस परस्पर प्यार की जिस में रहे सभी ललक॥
नव उमंगों के सहित आमोद उठता था छलक ।
सो गई जातीयता भी खोल देती थी पलक ॥
भूल करके भेद और विरोध की बातें अखिल ।
एक ही रँग बीच रँग जाती थीं सारी जाति मिल ॥ १७
किन्तु अब इस पर्व का है हो रहा जैसा पतन ।
किस विबुध का देख कर उसको व्यथित होगा न मन॥
प्रति बरस है म्लान होता कज सा इसका बदन।
है बिगड़ती जा रही इसकी बड़ी सुन्दर गठन ॥
धूल में है मिल रही इसकी सभी मधुमानता ।
मत्तता, आमोद, मंजुलता, उमंग, महानता ॥ १८
विश्व में जिस पर्व से जो जाति है गौरव-मई ।
है सदा जिसने मिटाई कालिमा जिसकी कई ॥
है जिसे जिस से मिली बहु जीवनी धारा नई ।
कीर्त्ति जिस के व्याज से जिस की दिगन्तों में गई ॥
आह ! भ्रान्त अतीव बन उस जाति के ही वंशधर ।
नाश करते हैं इसे नहिं देख सकते आँख-भर ॥ १९
रंग पड़ता देख उनका रंग जाता है बदल ।
लाल हो जाते हैं, मूँठ गुलाल जो जाती है चल ॥
कुमकुमों की मार उनको है बना देती विकल ।
है उन्हें चंचल बनाता गायकों का मत्त दल ॥
सुख रँगों को देख वे मुख तक उठा सकते नहीं ।
धूल उड़ती देख उनकी धूल उड़ती है वहीं ॥ २०
किन्तु उनकी औगुनों की ओर ही आँखें अड़ीं ।
वे नहीं इसके गुनों पर भूल करके भी पड़ीं ॥

वे कभी बारीकियों में भी नहीं इसकी गड़ीं ।
वे नहीं रुचि साथ ऊँची आँख से इसकी लड़ीं ॥
वे सकीं नहिं देख इसकी रीतियाँ न्यारी रची ।
है बहुत कुछ आज तक जातीयता जिनसे बची ॥ २१ ॥

कौन कहता है कुचालें हैं घुसी इसमें नहीं ।
मानता हूँ हैं बुरी बातें कई इसमें बहीं ॥
किन्तु है सच्ची सपूती काम करने में वहीं ।
लोक हित के वास्ते बुध ने जहाँ आँचें सहीं ॥
सुज बनाना, घुड़कियाँ लेना, बहकना है मना ।
जो बिगड़ती बात अपनी हम नहीं सकते बना ॥ २२ ॥

क्यों कुचालों पर न होगी धर्म की मुहरें लगी ।
क्यों अजानों की सभी बातें न होवेंगी रँगी ॥
दिन दहाड़े जो उन्हीं के सामने होगी ठगी ।
ज्ञान की वर ज्योति है जिनके विमल उर में जगी ॥
क्यों न होती जायगी, तम पुंज की धारा सबल ।
जो दमकती भानु की किरणें न आयेंगी निकल ॥ २३ ॥

दल अबोधों का कुचालों में इधर उलझा रहे ।
दल सुबोधों का उधर निज गौरवों में ही बहे ॥
तो बता दो जाति किस से निज व्यथाओं को कहे ।
वह कुअवसर में लपक कर किसके दामन को गहे ॥
निज परब त्यौहार में जिनकी नहीं ममता रही ।
वे मरम जातीयता का जानते कुछ भी नहीं ॥ २४ ॥

आएठली नव शिक्षितों की है नये रंगों ढली ।
हैं पुराने ढंग वालों के लिये सब ही भली ॥
नये ढँग से खिलाना चाहते हैं सब कली ।
ये उसे तजते नहीं जो बात है अब तक चली ॥

द्वंद् में पडकर इसी, अब वह नहीं नाता रहा।
सब परब त्यौहार का वह रग ही जाता रहा ॥ २५

तीस चालिस साल पहले सामने जो था समा।
जो अनूठा पन, परस्पर प्यार, था आँखों रमा॥
रग जैसा उन दिनों आमोद का देखा जमा।
जिस तरह से तब उरों में चाव रहता था थमा॥
आह! हमको आज दिन वह बात दिखलाती नहीं।
वह उमगें बादलों सी भूमतीं आती नहीं॥ २६

उन दिनों थी जोति फैली ज्ञान की इतनी नहीं।
उन दिनों भी सब कुचालें आज दिन की सी रहीं॥
किन्तु अपनापन रहा तब आज से बढकर कहीं।
इन दिनों सी तब न थीं जातीयता भीतें ढही॥
एक दिल हो उन दिनों जैसे मिले लगते नहीं।
लोग वैसे आज दिन यक रग में रँगते नहीं॥ २७।

किन्तु हम को है बहुत नव शिक्षितों से ही गिला।
प्यार से क्या वे अजानों को नहीं सकते मिला?॥
क्या मनो-मालिन्य की जड वे नहीं सकते हिला?।
वे पुन जातीयता को क्या नहीं सकते जिला?॥
हैं न ये बातें असभव जो हृदय में त्याग हो।
जाति का अपने परब त्यौहार का अनुराग हो॥ २८॥

क्या हुआ लिक्खे पढ़े जो चित्त में समता न हो।
निज परब त्यौहार की औ जाति की ममता न हो॥
जी परस्पर प्यार में सद्भाव में रमता न हो।
थामने से भी हृदय का बेग जो थमता न हो॥
वह बडप्पन सभ्यता गौरव धरा-तल में धँसे।
रग जिस पर लोक हित की लालसा का नहिं लसे॥ २९॥

जो परब त्योहार अपने हम मनावेंगे नहीं ।
जो बुरी परिपाटियों को हम मिटावेंगे नहीं ॥
जो बहकते भाइयों को पथ दिखावेंगे नहीं ।
जोति जो घिरते तिमिर में हम जगावेंगे नहीं ॥
तो भला किसको पड़ी है और की जो ले बला ।
जाति ही सकती है कर निज जाति का सच्चा भला ॥ ३० ॥
आज भी यह बात इन में है कि जिस से हो भला ।
हम सुमति के साथ सकते हैं सुफल जिस से फला ॥
हम तनिक कर भूल इनका घोंट सकते हैं गला ।
पर कहाँ फिर पा सकेंगे देश-व्यापी वह कला ॥
जाति जो नहिं पर्व उत्सव प्रेम धारा में रही ।
वह रही तो नाम को संसार में जीती रही ॥ ३१ ॥
ऐ नई पौधें करो मत जाति-हित में आतुरी ।
फूँक दो अनुराग निजता धुन भरी वर बाँसुरी ॥
ऐ पुराने ढंग वालो ! छोड़ दो चालें बुरी ।
आँख खोलो फेर लो अपने गले पर मत छुरी ॥
प्यार से मिल, गोद में निज उत्सवों को लो लिटा ।
जाति जीती कब रही निज कीर्त्ति चिन्हों को मिटा ॥३२॥

होलिका दहन ।

[रोला ।]

आज सुतिथि पूनो है फागुन मास सरस की ।
वह वर्षा सी जहाँ तहाँ होती है रस की ॥
मन्द मन्द है मलय पवन बहती मदमाती ।
मीठी महँक रसाल मंजरी की है आती ॥ १ ॥

वह देखो सामने बड़ी ही भीड़ लगी है।
उसके बीचो बीच जोर से ज्वाल जगी है॥
जो लकड़ी की उच्च टाल है धू धू जलती।
बड़े वेग से सबल आग जिसकी है चलती॥ २॥
उस पर दानव-भगिनि होलिका पैंठी ऐंठी।
गोद लिये प्रह्लाद कुसुम सम को, है बैठी॥
झूठे अभिमानों वरदानों का बल पाकर।
वह बचने है चली भक्तका गात जलाकर॥ ३॥
एक ओर है भक्ति दूसरी दिशि दानवता।
एक ओर कुप्रवृत्ति दूसरी दिशि मानवता॥
अक बीच पामरता की है पुण्य दिखाता।
कूट-नीति की गोद न्याय है देखा जाता॥ ४॥
है कुरीति ने सदाचार को गह कर पकड़ा।
गया कुचाल कुपेचों द्वारा गौरव जकड़ा॥
किन्तु हो गये पुण्य न्याय आदिक यश-भागी।
हुआ होलिका-दहन, बचा बालक बड़-भागी॥ ५॥
साल साल इसका उत्सव है घर घर होता।
पर अब वैसा रुचिर रहा नहिं रुचिका सोता॥
भूल गये हम मर्म्म परब उत्सव का अपने।
देखा करते हैं उलटी चालों के सपने॥ ६॥
झूठे अभिमानों औ कल्पित वार्तों द्वारा।
दिव्य भाव अपना खोते जाते हैं सारा॥
दानवता में हम हैं अपनी भक्ति डुबोते।
पड़कर बुरी प्रवृत्ति बीच मानवता खोते॥ ७॥
पामरता औ कूट-नीति-झोंकों के आगे।
अहह हमारे पुण्य न्याय फिरते हैं भागे॥

सदाचार-मिस कुरीतियों को हैं अपनाते।
हैं कुचाल धारा में गौरव विपुल वहाते ॥ ८ ॥
इससे बढ़ कर बात कौन दुख की होवेगी।
क्यों न हमारी दशा देख निजता रोवेगी ॥
गावो, खेलो, हँसो वाद्य भी विविध बजावो।
पर गाली बक मत गौरव का गला दबावो ॥ ६ ॥
रँगो रंग में, उमंग अबीर गुलाल लगावो।
किन्तु रंग जातीयता अधिकतर दिखलावो ॥
जन्म भूमि की रज लेकर निज शीश चढ़ावो।
पर मेरे प्यारे मत अपनी धूल उड़ावो ॥१०॥
जो नहि आँखें खुलीं तो रहोगे पछताते।
तात ध्यान दो इधर जाति-ममता के नाते ॥

चेतावनी।

[होली]

(१)

मान अपना बचाओ, सम्हल कर पाँव उठावो।
गावो भाव भरे गीतों को, बाजे उमंग बजावो ॥
तानें ले ले रस बरसावो, पर ताने न सहावो।
भूल अपने को न जावो ॥ १ ॥
बात हँसी की मरजादा से कहकर हँसो हँसावो।
पर अपने को बात बुरी कह आँखों से न गिरावो।
हँसी अपनी न करावो ॥ २ ॥
खेलो रंग अबीर उड़ावो लाल गुलाल लगावो।
पर अति सुरँग लाज चादर को मत बदरंग बनावो।
न अपना रंग गँवावो ॥ ३ ॥

जनम-भूमि की रज को लेकर सिर पर ललक चढावो।
पर अपने ऊँचे भावों को मिट्टी में न मिलावो।
न अपनी धूल उड़ावो॥ ४॥
प्यार-उमग-रग में भींगो सुन्दर फाग मचावो।
मिल जुल जी की गाँठें खोलो हित की गाँठ बँधावो।
प्रीति की बेलि उगावो॥ ५॥

(२)

पिटे न देखो ताली, न बिगडे मुख की लाली।
करके कितने जतन बड़ों ने जो मरजादा पाली॥
देखो पत उसकी नहिं उतरे वह न कहाने जाली।
कढ़े मुखडे से गाली॥ १॥
बची खुची निज मान बडाई सँभली जो न सँभाली।
तो ऊँची क्यों आँख रहेगी, छिन जायेगी ताली।
सुजनता-मदिर वाली॥ २॥
मैला कर जो निज हाथों को कीच किसी पर डाली।
तो नहिं भरम उसी का खोया अपनी पत भी गँवाली।
कुरुचि की लीक लगाली॥ ३॥
बूटी छान, पान कर मदिरा, आँख बना मतवाली।
जो तज लाज नहीं कर सकते सुध बुध की रखवाली।
नाक कुल की तो कटा ली॥ ४॥
सोच समझ कर जो नहिं अपनी बिगडी बात बनाली।
तो कैसे मुख दिखलावेंगे बीत चली अँधियाली।
हुई सब ओर उँजाली॥ ५॥



दिल के फफोले।

[चतुष्पदी]

ग्रंथ कितने पढ़े बहुत डूबे।
भेद जाना अनेक आप को॥
संत जन की सुनी सभी बातें।
पर न जाना गया प्रभो क्या हो॥ १॥

आप में है अपार बल बूता।
यह सदा ही हमें सुनाता है॥
किस लिये काम वह नहीं आता।
जब निबल को सबल सताता है॥ २॥

दानवों के कठोर हाथों से।
सैकड़ों देव-वंश-दीप बुता॥
धूल में मिल गये सुजन कितने।
फिर कहाँ आप की रही प्रभुता॥ ३॥

शान्त बैठा निरीह पछी भी।
जो नहीं व्याध बान से बचता॥
हो गई तो कठोर पन की हद।
देख ली आप की दयामयता॥ ४॥

सामने बाप और मा के ही ।
तोड़ते देख बालकों को दम ॥
है कलेजा पकड़ न लेता कौन ।
क्या कहें आप के हृदय को हम ॥ ५ ॥
मर मिटे अन्न के बिना कितने ।
कितने ही आध पेट खा सूतें ॥
है कहीं यों पड़ा करोड़ों मन ।
देखिये आप अपनी करतूतें ॥ ६ ॥
घात कहते असख्य जीवों को ।
निधि डुबोता धरा निगलती है ॥
गिरि उगल आग ध्वंस करते हैं ।
बात यह क्या कभी न खलती है ॥ ७ ॥
हैं बनाये गये कुबेर वही ।
जो पकड़ते हैं दाँत से पैसा ।
तंग मैं हूँ उदार को पाता ।
आप का यह प्रपंच है कैसा ॥ ८ ॥
क्लेश पर क्लेश है दुखी पाता ।
यह बिकारों भरा मनुज मन है ॥
रोग का है सदन बना नर-तन ।
क्या यही आप का बड़प्पन है ॥ ९ ॥
जो भले और हैं बहुत सीधे ।
पूछता तक उन्हें नहीं कोई ॥
है चलाकों की बोलती तूती
नीति की बेलि है भली बोई ! ॥ १० ॥
हाथ पाँवों बिना रचे कितने ।
है किसी को बना दिया काना ।

भोगते हैं बहुत बिना आँखों।
हैं इसी को ही कहते मनमाना ॥ ११ ॥
जो चमकते रतन धरा के हैं।
हैं उन्हें करते भोर का तारा ॥
मूढ़ पाते हैं आयु लोमस की।
आप का ढंग कितना है न्यारा ॥ १२ ॥
प्यास जिनकी लहू से बुझती है।
जो निगल और को अघाते हैं ॥
टूट उन पर न जो पड़ी बिजली।
तो प्रभु! आप क्यों कहाते हैं! ॥ १३ ॥
बात जिनकी बड़ी अनूठी है।
पर भरा पेट में हलाहल है ॥
जो न पीछे को मुख बना उनका।
तो सधा आप का न धुधियल है ॥ १४ ॥
है जिन्हें धुन सवार यह रहती।
किस तरह मैं करूँ बुरा किसका ॥
जो उन्हें आप ने न दीं सींगें।
तो कहूँ आप की समझ को क्या ॥ १५ ॥
जब मनुज-रक्त से सना गारा।
शिर लगाये गये कँगूरों पर ॥
एक दिन में गले कटे लाखों।
तब सके आप क्यों नहीं कुछ कर ॥ १६ ॥
जब बनी प्राण-नाशिनी गोली।
जब बनी तोप काल की पोती ॥
तब रहे देखते बदन किसका।
आप से है हमें कुढ़न होती ॥ १७ ॥

देख शूली मसीह को पाते ।
टेप शर व्याध से विधा हरि-तन ॥
भू-समाती विलोक सीता को ।
आप से फिर गया हमारा मन ॥ १८ ॥
छीन लेते हैं आँख का तारा ।
लूटते हैं किसी का जीवन-धन ॥
हैं किसी का सुहाग ले लेते ।
है यही आप का निराला पन ॥ १९ ॥
पीट दे या कि सर पटक देवे ।
कूट डाले न क्यों कोई छाती ॥
पर टलेगी कभी नहीं होनी ।
आप की कुछ कही नहीं जाती ॥ २० ॥
क्यों बनाया गया जगत ऐसा ।
है सुलझती न गुत्थियाँ जिसकी ॥
चाल यह दूर की बडी गहरी ।
आप को छोड और है किस की ॥ २१ ॥
हैं बहुत मत; अनेक झगडे हैं ।
आप को मानते नही कितने ॥
हैं सभी ओर उलझनें तो भी ।
हम समझते हैं आप हैं जितने ॥ २२ ॥
जब कहीं आप की बिना इच्छा ।
डोलता है न एक भी पत्ता ॥
किस लिये पेच पेंच फिर इतना ।
जब कि है एक आप की सत्ता ॥ २३ ॥
ए सभी खेल जो प्रकृति के हैं ।
आप क्या हैं ? नहीं बताते क्यों ?

जो कलें आप के करों में हैं।
ठीक उन को नहीं चलाते क्यों ? ॥ २४ ॥

दीन की आह।

[चौतुका।]

न तो हिलाती गगन न तो हरि हृदय कँपाती।
न तो निपीड़क उर को है भय-भीत बनाती॥
निपट-निराशा-भरी निकल चुप चाप वदन से।
दीन आह दुख साथ वायु में है मिल जाती॥ १॥
उसकी वेधकता का परिचय पाने वाला।
उसकी दुख-मयता को जी में लाने वाला॥
देखा जाता नहीं, कहीं कोई होता है।
दीन-आह में अपनी आह मिलाने वाला॥ २॥
बार बार अपने उर को मथ कर अकुलाती।
अमित-ताप-परिताप भरी होठों पर आती॥
फिर सहती अपमान शून्य में लय होती है।
दीन-जनों की आह नहीं कुछ भी कर पाती॥ ३॥
सुनते हैं उस से है पाहन भी भय पाता।
उस से है ईश्वर का आसन भी डिग जाता॥
किन्तु बात यह सब कहने सुनने ही की है।
दीन-आह का एक विफलता से है नाता॥ ४॥
वीर आह के तुल्य नहीं वह लहू बहाती।
सबल आह के सदृश नहीं वह लोथ ढहाती॥
आशङ्कित कर धीर आह के सम नहिं होती।
वह अपना ही हृदय मथन कर है रह जाती॥ ५॥

वैसी ही उस से होती दिन रात ठगी है ।
वही दीनता अब भी उस की बनी सगी है ॥
कौशल है, अति गूढ़ चातुरी है, यह कहना ।
दीन-आह पर हरिस्वीकृति की छाप लगी है ॥ ६ ॥
पवि कठोर को धूल बना कर धर सकती है ।
लोकप दाहक दुसह अँगारे झर सकती है ॥
किसी दयालु-हृदय से निकली हैं ये बातें ।
आह दीन की भला नहीं क्या कर सकती है ॥ ७ ॥
सभी सताने वाले निज कर मलते होते ।
पड़ विपत्तियों में दिन रात विचलते होते ॥
जो दीनों की आह में जलन कुछ भी होती ।
ऊँचे ऊँचे महल आज तो जलते होते ॥ ८ ॥
चहल पहल है जहाँ वहाँ मातम छा जाता ।
स्वर्ग-छटा है जहाँ वहाँ रौरव उठ आता ॥
दीन आह की ध्वनि यदि हरि-कानों में जाती ।
नन्दन-वन है जहाँ आज मरु वहाँ दिखाता ॥ ९ ॥
किया लोक-हित विबुध-जनों ने धर्म कमाया ।
जो उनको सब काल प्रभाव-मयी बतलाया ॥
किन्तु जान कर मरम दीन-जन की आहों का ।
भला, कलेजा किसका है मुँह को नहिं आया ॥१०॥

दुखिया के आँसू ।

[चतुष्पदी]

बावले से घूमते जी में मिले ।
आँख में बेचैन बनते ही रहे ॥
गिर कपोलों पर पड़े बेहाल से ।
बात दुखिया आँसुओं की क्या कहें ॥ १ ॥
हैं व्यथायें सैकड़ों इन में भरी ।
ये बड़े गंभीर दुख में हैं सने ॥
पर इन्हें अवलोक करके दो बता ।
हैं कलेजा थामते कितने जने ॥ २ ॥
बालकों के आँसुओं को देख कर ।
है उमड़ आता पिता-उर प्रेम मय ।
कौन सी इन आँसुओं में है कसर ।
जग-जनक भी जो नहीं होता सदय ॥३॥
चन्द्र-वदनी आँसुओं पर प्यार से ।
हैं बहुत से लोग तन मन वारते ॥
एक ये हैं, लोग जिनके वास्ते ।
हैं नहीं दो बूँद आँसू डालते ॥ ४ ॥
क्या न कर डाला खुला जादू किया ।
आँख के आँसू कढ़े या जब बहे ॥
किन्तु ये ही कुछ हमें ऐसे मिले ।
हाथ ही में जो विफलता के रहे ॥ ५ ॥
पोंछ देने के लिये धीरे इन्हें ।
है नहीं उठता दया मय-कर कहीं ॥

वैसी ही उस से होती दिन रात ठगी है ।
वही दीनता अब भी उस की बनी सगी है ॥
कौशल है, अति गूढ चातुरी है, यह कहना ।
दीन-आह पर हरि स्वीकृति की छाप लगी है ॥६॥
पवि कठोर को तूल बना कर धर सकती है ।
लोकप दाहक दुसह अँगारे भर सकती है ॥
किसी दयालु-हृदय से निकली हैं ये बातें ।
आह दीन की भला नहीं क्या कर सकती है ॥७॥
सभी सताने वाले निज कर मलते होते ।
पड विपत्तियों में दिन रात विचलते होते ॥
जो दीनों की आह में जलन कुछ भी होती ।
ऊँचे ऊँचे महल आज तो जलते होते ॥८॥
चहल पहल है जहाँ वहाँ मातम छा जाता ।
स्वर्ग-छटा है जहाँ वहाँ रौरव उठ आता ॥
दीन आह की ध्वनि यदि हरि-कानों में जाती ।
नन्दन-वन है जहाँ आज मरु वहाँ दिखाता ॥९॥
किया लोक-हित विबुध-जनों ने धर्म कमाया ।
जो उनको सब काल प्रभाव-मयी बतलाया ॥
किन्तु जान कर मरम दीन-जन की आहों का ।
भला, कलेजा किसका है मुँह को नहिं आया ॥१०॥



राजतिलक का दिन।

[दादरा]

आवो हिलमिल गावें बधाई।
देखो कैसी बजी शहनाई॥
जलसा है आज राज का महराज का मेरे।
राजाधिराज का मेरे सरताज का मेरे॥
नभ देखो ध्वजा फहराई॥
सूरज न जिनके राज में है डूबता कभी।
सुख राम-राज सा है जहाँ पा रहा सभी॥
कर दूर सकल दुचिताई॥
जिनकी निगाह मे है होता बहुत भला।
है दूर हो गई सी सब हिन्द की बला॥
कुछ ऐसी कला दिखलाई॥
सुन करके बात जिनकी प्यारी दया भरी।
जादू हुआ, सूखी हुई डालें हुई हरी॥
कुम्हलाई लता लहराई॥
जिन के बड़ों ने देश का सब दुख मिटा दिया।
लोहा को हाथ से छू सोना बना लिया॥
बहु उजड़ी नगरिया बसाई॥

इन बेचारों पर किसी हम-दर्द की ।
    प्यार-वाली आँख भी पडती नहीं ॥ ६ ॥
क्यों उरों से ये दृगों में आ कढे ।
    था भला, जो नाश हो जाते वहीं ॥
जो किसी का भी इन्हें अवलोक कर।
    मन न रोया जी पसीजा तक नहीं ॥ ७ ॥
भाग फूटा ये बसी लिपटी रही ।
    वह दुखों से ही सदा नाता रहा ॥
फिर अजय क्या, इस अभागे जीव के
    आँसुओं का जो असर जाता रहा ॥ ८ ॥
वह पडी जो धार दुखिया आँख से ।
    क्यों न पानी ही उसे कहते रहें ॥
है नहीं जिसने जगह जी में किया ।
    हम भला कैसे उसे आँसू कहें ॥ ९ ॥
है कलेजे को धुला देता कोई ।
    मैल चितवन पर कोई लाता नहीं ॥
कौन दुखिया आँसुओं पर हो सदय ।
    पूछ ऐसों की नहीं होती कहीं ॥ १० ॥

यह सुख विलसैं अधिकाई ॥
जीवें कुमार सारा कुनबा रहे सुखी।
खोजे मिले न राज में कोई कहीं दुखी ॥
कर दिन दिन भली कमाई ॥

कौआली।

क्यों जी उमङ्ग पर है, यों आज मेरा आया।
ऐसा समाँ निराला क्यों आँख में समाया ॥
जी को लुभाने वाली, मीठे सुरों में ढाली।
शहनाइयों को किसने, क्यों भोर ही बजाया ॥ १ ॥
प्यारी है कैसी लाली, इतनी है क्यों निराली।
सूरज चमक दमक में क्यों कर हुआ सवाया ॥
किरनों से है विलसती, या है दिसा विहँसती।
क्यों रङ्ग प्यार में है, उसने बसन रँगाया ॥ २ ॥
चिड़ियाँ हैं चहचहाती, या हैं सुराग गाती।
सब ने बड़ा सुरीला, कैसे गला बनाया ॥
भौंरों की गूँज प्यारी, क्यों है बड़ी ही प्यारी।
मिसरी डली को उसमें, किसने है क्यों मिलाया ॥ ३ ॥
गाढ़ा हुआ हरापन, छाया अजीब जोबन।
क्यों साथ पत्तियों के, सब पेड़ लगबगाया ॥
इतने अनूठे पन से, कुछ और ही फबन से।
क्यों खिल गई हैं कलियाँ, क्यों फूल रङ्ग लाया ॥ ४ ॥
क्यों है हवा महकती, औ मन्द मन्द बहती।
क्यों वेलियों को उसने, यों चाव से नचाया ॥

जिनके ही जाति-वालों ने जी की कली खिला ।
कितने मरे हुओं को फिर से लिया जिला ॥
यक जड़ी पिला संग लाई ॥
पुल, रेल, तार, डाक, मदरसे औ अस्पताल ।
जादू-भरी कलें, हैं जिन में हुआ कमाल ॥
सब हैं जिन की बनवाई ॥
सोना उछालते पथ बुढिया बनी ठनी ।
जाती चली है राज में जिनके निडर बनी ॥
कब किसने आँख उठाई ॥
छू बाज है बया का सकता न एक पर ।
पीते हैं बाघ बकरी जल एक घाट पर ॥
ऐसी है उनकी ठकुराई ॥
कब के अचेत से थे जो सो रहे पड़े ।
उन को जगा जगा के उठाया किया खड़े ॥
यों करता है कौन भलाई ॥
पथरा गई थी जो नही थी देखती कभी ।
वह आँख खुल गई औ लगी देखने सभी ॥
दी अजब उन्होंने दवाई ॥
उनकी ही ओर आँख है सब देस की लगी ।
जी में उमेद की है एक जोति सी जगी ॥
वह हैं अभिमत फल दाई ॥
पेड़ों की डालियाँ रहें जब तक हरी भरी ।
आँखों में देख कर हो जब तक उन्हें तरी ॥
सर, कमल खिलें सलुनाई ॥
तब तक सुहाग मेरी महरानि का बढ़े ।
ऊँचा प्रताप-तारा महराज का चढ़े ॥

यह सुख बिलसैं अधिकाई ॥
जीवें कुमार सारा कुनवा रहे सुखी।
खोजे मिले न राज में कोई कहीं दुखी ॥
कर दिन दिन भली कमाई ॥

कौआली।

क्यों जी उमङ्ग पर है, यों आज मेरा आया।
ऐसा समाँ निराला क्यों आँख में समाया ॥
जी को लुभाने वाली, मीठे सुरों में ढाली।
शहनाइयों को किसने, क्यों भोर ही बजाया ॥ १ ॥
प्यारी है कैसी लाली, इतनी है क्यों निराली।
सूरज चमक दमक में क्यों कर हुआ सवाया ॥
किरनों से है बिलसती, या है दिसा बिहँसती।
क्यों रङ्ग प्यार में है, उसने बसन रँगाया ॥ २ ॥
चिड़ियाँ हैं चहचहाती, या हैं सुराग गाती।
सब ने बड़ा सुरीला, कैसे गला बनाया ॥
भौंरों की गूँज प्यारी, क्यों है बड़ी ही प्यारी।
मिसरी डली को उसमें, किसने है क्यों मिलाया ॥ ३ ॥
गाढ़ा हुआ हरापन, छाया अजीब जोवन।
क्यों साथ पत्तियों के, सब पेड़ लगबगाया ॥
इतने अनूठे पन से, कुछ और ही फबन से।
क्यों खिल गई हैं कलियाँ, क्यों फूल रङ्ग लाया ॥ ४ ॥
क्यों है हवा महकती, औ मन्द मन्द बहती।
क्यों बेलियों को उसने, यों चाव से नचाया ॥

फल फूल वालियों को, पत्तों को, डालियों को ।
क्यों हार मोतियों का, है ओस ने, पिन्हाया ॥ ५
लहरें हैं क्यों दमकती, क्यों हैं अजब थिरकती ।
क्यों आज चमकियों को, इनमें गया लगाया ॥
प्यारे सरोवरों में, नदियों में पोखरों में ।
चादर जरी की किसने, हे किस लिये बिछाया ॥ ६
क्यों लोग हैं उमगते, आनन्द बीच पगते ।
यों गाँव औ नगर को, सबने है क्यों सजाया ॥
क्यों मेरे घर का माली, अपनी अनूठी डाली ।
बीछे अछूते प्यारे, फूलों से भरके लाया ॥ ७॥
जिस काल ये तरंगें, कितनी नई उमगें ।
जी में थीं मेरे उठतीं, मैं था बहुत लुभाया ॥
उस काल ही उमग कर, कुछ फूल सा बरस कर ।
एक देवदूतने यों, हँस कर मुझे सुनाया ॥ ८॥
राजाधिराज प्यारे, जो आर्ज हैं तुम्हारे ।
जिनका सुयश निराला, है देस देस छाया ॥
थकते न जिसको गिन गिन, वह राजतिलक का दिन ।
उनका है आज इससे, ऐसा समा दिखाया ॥ ९॥
यह बात सुन अनूठी, हीरे जडी अँगूठी ।
करके तुरत निछावर, यों ईश से मनाया ॥
महराज ये हमारे, जबतक हैं नभ में तारे ।
फूले, फलें व जीवें, सुखसे रहें सजाया ॥१०॥

वरस गाँठ वधाई।

[द्विपद]

क्यों आसमान नीला यों आज रग लाया।
　　ऐसा समा निराला क्यों ओंख में है छाया ॥ १ ॥
क्यों आ रही है किरनें फलती बहुत उमगती।
　　यों आन वान से क्यों सूरज भी जगमगाया ॥ २ ॥
क्यों खिलगई हैं कलियाँ क्यों फूल हँस रहे हैं।
　　है कौनसा सँदेसा किस से इन्होंने पाया ॥ ३ ॥
अठखेलियाँ हवा भी क्यों आज कर रही है।
　　क्यों एक एक पत्ता पेडों का मगमगाया ॥ ४ ॥
क्यों लोग यों उमगों में हैं भरे दिखाते।
　　इतना लुभावना क्यों चिडियों ने राग गाया ॥ ५ ॥
मैं सोचता यही था यक देवदूत ने आ।
　　तब तक मुझे सँदेसा यह प्यार से सुनाया ॥ ६ ॥
भूलो न आज उसकी है वर्ष-गाँठ प्यारी।
　　सूखे हुओं को जिसने फूला, फला वनाया ॥ ७ ॥
अपना गुलाव से मुँह धोकर वहुत अदव से।
　　फिर नाम लार्ड हार्डिंग उनका हमें वताया ॥ ८ ॥
यह वात सुन वडी ही जी को लुभाने वाली।
　　पूरा उमग पटा मैं फूला नहीं समाया ॥ ९ ॥
जितनी करें वडाई उनकी सभी है थोडी।
　　ऐसा ललक के किसने हमको गले लगाया ॥१०॥
है फूल मुँह से झडता जो वात वे हैं करते।
　　उसकी महँक ने किसके जी को नहीं लुभाया ॥११॥

देने को हम सबों को मुँह माँगी बात कितनी ।
सच्ची बता दो किसने यों हाथ था उठाया ॥१२॥
किसने उठा लिया यों गिरतों को थाम करके ।
सोते हुओं को किसने यों प्यार से जगाया ॥१३॥
उनके लहू में ऐसी तासीर है निराली ।
बम के असर को जिसने काफूर सा उड़ाया ॥१४॥
ऐसी भरी हुई है उनमें भलाई सच्ची ।
दुख की घडी में जिसने सब देस को रुलाया ॥१५॥
उठता न हाथ उसका आँखें भी फूट जातीं ।
जिस बावले ने जी में उनका बुरा मनाया ॥१६॥
पर जो प्रभू है सब का इस में भी उसकी लीला ।
दिखला पडी है, उसने सब को है यह जताया ॥१७॥
कैसे करेगा कोई यक बाल उसका बाँका ।
जिस पर है हाथ उसका जिस पर है उसका साया ॥१८॥
जग में बडी निराली जो जाति है बृटिश की ।
जिस ने छुला के हमको न्यारी जडी, जिलाया ॥१९॥
सूरज न डूब सकता है राज-बीच जिसके ।
जिसने कँवल है पत्थर की गोद में खिलाया ॥२०॥
उस वीर-जाति ही में जनमे हैं लाट साहब ।
फिर क्यों न होगा उनका इतना बलद पाया ॥२१॥
सच्ची तो बात यों है ऐसे सपूत ही से ।
उस जाति ने है जग में इतना सुजस कमाया ॥२२॥
सारी भलाइयों की पुतली हैं उनकी लेडी ।
उन में दिखा रहा है हर एक गुन सवाया ॥२३॥
वैसा कहीं न देखा सब ने उसे सराहा ।
दुख की घडी में जैसा धीरज था उनमें आया ॥२४॥

पाकर सेहत कही थी जो बातः प्यार डूबी।
उसने है लाट साहब को और भी बढाया ॥२५॥
कितना है प्यार सच्चा कुन्दन सा उनके जी का।
वह और भी है निखरा गरचे गया तपाया ॥२६॥
आवो मनायें उनकी यह वर्ष-गाँठ प्यारी।
उस ईश ने हमें दिन यह भाग से दिखाया ॥२७॥
जस देस देस फैले, हों दूर सब बलायें।
हीरों जड़ा हो उनकी लेडी के तन का साया ॥२८॥
फूलें, फलें व जीवें सुख पावें लाट साहब।
उनके घरों में सब दिन बजता रहे बधाया ॥२९॥

द्विपद।

किस लिये इतना है ए रँग ला रहे।
फरहरे क्यों आज हैं फहरा रहे ॥ १ ॥
क्यों खड़ा है सामने पिंडाल यह।
लोग इसमें किस लिये हैं जा रहे ॥ २ ॥
यों सजाया है गया मैदान क्यों।
किस लिये लड़के जमे हैं आ रहे ॥ ३ ॥
बज रही है किस लिये नौबत यहाँ।
किस लिये हैं फूल सब मुसका रहे ॥ ४ ॥
किस लिये हिन्दू, मुसल्माँ, क्रिश्चियन।
एक रँग में हैं रँगे दिखला रहे ॥ ५ ॥
है बरस-गाँठ आज वाइसराय की।
जिन से हैं हम लोग सब सुख पा रहे ॥ ६ ॥

है इसी दिन की बदौलत यह समाँ ।
हैं इसी से लोग यों मॅडला रहे ॥ ७ ॥
हो रहे हैं खेल कितने ढग के ।
जो बहुत आँखों को हैं बेलमा रहे ॥ ८ ॥
हैं खेलौने बिक रहे हर रंग के ।
जो हैं लडकों को बहुत बहला रहे ॥ ९ ॥
रीझ पा करके उमगों में भरे ।
कैसा हॅस हॅस वे उन्हें हैं ला रहे ॥ १० ॥
हैं मिठाई की दुकानें लग गई ।
लडके हैं मन की मिठाई खा रहे ॥ ११ ॥
छूटेंगी रगीन आतश-बाजियाँ ।
रंग जिस में रात का अच्छा रहे ॥ १२ ॥
फिर तमाशा होगा बायस्कोप का ।
जिस में सब का जी बहुत उमडा रहे ॥ १३ ॥
क्यों न होवेगा वहाँ ऐसा जहाँ ।
साया इसमिथ से कलक्टर का रहे ॥ १४ ॥
वे बडे हैं नेक दिल औ पापुलर ।
क्यों न उनका नाम यों ऊँचा रहे ॥ १५ ॥
माँगता हूँ सर नवा यह ईश से ।
ऐसा प्यारा दिन सदा आता रहे ॥ १६ ॥
सब गुनों वाली बृटिश की जाति का ।
हिन्द के सर पर बना साया रहे ॥ १७ ॥

एक अपील ।

[षट्पद]

सुनो ऐ समय पर सम्हल आने वालो ।
पड़े काम पै सामने आने वालो ॥
सदा आन रख नाम के पाने वालो ।
बड़े बाप के बेटे कहलाने वालो ॥
सवाल एक है सामने आज आया ।
रहा क्या, उसे जो न हलकर दिखाया ॥ १ ॥
नहीं देख कठिनाइयाँ जो दहलते ।
जो हैं पाँव से अड़चनों को कुचलते ॥
जगह से जो हैं काम करके ही टलते ।
नहीं शेर के सामने जो विचलते ॥
बड़ा काम सारा उन्हीं का किया है ।
उन्हों ने ही दूध अपनी मा का पिया है ॥ २ ॥
जिन्हें बेबसी है नहीं आ सताती ।
जिन्हें काहिली है नहीं घर दबाती ॥
न उलझन कभी जिनके जी को कँपाती ।
न कायरता है जिनका बेड़ा डुबाती ॥
बुरे दिन नहीं उनके जीवट को खोते ।
दबकता है दुख सामने उनके होते ॥ ३ ॥
जो हैं धुन के पक्के, विचारों के पूरे ।
न मनसूबे होते हैं जिनके अधूरे ॥
जो जीवट के पुतले हैं करतब के कूरे ।
उमगों के जो हैं गठे तानपूरे ॥

जो चाहें तो वे आसमाँ को हिलायें ।
उडा देते हैं फूँक से वे वलायें ॥ ४ ॥
हमें गुर है जिस जाति ने यह वताया ।
वहुत से विगडतो को जिसने वनाया ॥
करोडों कुचलतों को जिसने वचाया ।
सिसकतों को जिसने जुगुत से जिलाया ॥
किसी का उजाडा न जिसने वसेरा ।
सचाई का उडता है जिसकी फरेरा ॥ ५ ॥
हमें जिसने सोते से आ के जगाया ।
वहुत कुछ सिखाया, लिखाया, पढाया ॥
अँधेरे में हम को उँजाला दिखाया ।
विपत के दिनों में गले से लगाया ॥
पिलाई जडी वह, जतन वह वताया ।
लहू जिस्से सूखी नसों में भी आया ॥ ६ ॥
किया हिन्द पर जिसने यहसान भारी ।
वहुत जिसने विगडी सँवारी, सुधारी ॥
जो सरताज है सब तरह से हमारी ।
वृटिश-नाम-वाली वही जाति न्यारी ॥
गुनाहों विना देख जलता वहुत घर ।
छुरा देख फिरता सचाई गले पर ॥ ७ ॥
वडी डाँट के साथ ले वीर वाँके ।
भिडी आज है जरमनी सग जाके ॥
मचा के वडी मार गोले चला के ।
दिये उसके छक्के छुडा छेंक नाके ॥
यह सच है कि वैरी सहेगा कसाला ।
रहेगा वृटिश-जाति का वोलवाला ॥ ८ ॥

मगर इस समय हिन्द का काम क्या है।
यही देखना है, यही सोचना है॥
सदा से यही ढंग इस का रहा है।
न दम रहते एहसान को भूलता है॥
हितू ने जहाँ पर पसीना गिराया।
वहाँ इसने अपना लहू है बहाया॥ ९॥
भला रह गया क्या हमें फिर बताना।
खलेगा बहुत दाँव पर चूक जाना॥
न तन का भरोसा न धन का ठिकाना।
सम्हल जाइये आप को है दिखाना॥
पहाड़ आ गिरे सिर न तो भी हटेंगे।
बृटिश नाम जपते वहीं मर मिटेंगे॥ १०॥
बहुत हम ने सोचा बहुत देखा भाला।
बृटिश राज को पाया सब से निराला॥
प्रजा को भला किसने यों पोसा पाला।
उसे किसने यों प्यार कर कर सम्हाला॥
गिरौं पास उसके है सब कुछ हमारा।
बजा है निछावर जो हो देस सारा॥ ११॥
वह सच्चा सपूत आज दिन है यहाँ का।
वही आज दिन है बहादुर बला का॥
रहेगा उसी के बड़प्पन का साका।
उड़ेगी उसी के सुजस की पताका॥
जो सच्ची बृटिश-जाति के काम आये।
बढ़े जरमनों को जो नीचा दिखाये॥ १२॥
यही सोच याँ के बहुत से लड़ाके।
गये हैं लड़ाई में डंके बजा के॥

करेंगे वहाँ नाम जौहर दिखा के।
मरेंगे, रहेंगे सरग बीच जाके॥
उन्हों ने सपूती का बीडा उठाया।
हमारे मुहों में है चन्दन लगाया॥१३॥
बता दीजिये ए बडे नाम वाले।
न जिनको पडे अपने प्रानों के लाले॥
जो घायल बनें या पडें दुख के पाले।
तो पत क्यों रहेगी उन्हें बे सम्हाले॥
न भलमन्सी होगी कि उन पर तो फूलें।
पर उनके यतीमों को बेवों को भूलें॥१४॥
बडी बात है देस के काम आना।
यतीम और बेवों के दुख का घटाना॥
बडा भाग है ऐसे अवसर का पाना।
हमें चाहिये हाथ जी से बढाना॥
सब अपने सपूतों का बदला चुकावें।
जहाँ तक बने आज दिन,' दें दिलावें॥१५॥
ठनी यह रहे बात जी में हमारे।
टलेंगे नहीं दमदमों के भी मारे॥
यहाँ जितने हैं छोड कर बूढे, बारे।
बृटिश के लिये होंगे रनसे न न्यारे॥
चने चाब, चिथडे पहन, सब सहेंगे।
मदद करते हम बेकसों की रहेंगे॥१६॥
बृटिश को न जन का न धन का है लाला।
उसे है नहीं शूर वीरों का टाला॥
मगर क्यों रहेगा बना मुख उँजाला।
जो अपना धरम आज हमने न पाला॥

न येयों यतीमों के जो काम आये।
पड़े काम रन में न जो रग लाये ॥१७॥
महाराज जीवें, बडा नाम पावें।
बढी धाक भगवान दिन दिन बढावें ॥
महारानी नित रग रलियाँ मनावें।
हम उन के रहें और काम उनके आवें ॥
बृटिश-जाति जीते, सुयश हो सवाया।
सदा हम सबों पर रहे उसका साया ॥१८॥

हमारे सपूत।

[षट्पद]

विना बादलों क्यों गरज है सुनाती।
दिसाओं में क्यों है अजब गूँज छाती ॥
लहर पर लहर क्यों सुरों की है आती।
बडी ही गठी धुन है क्यों रग लाती ॥
उमगों में क्यों भर गया देस सारा।
लहू क्यों गरम हो गया है हमारा ॥ १ ॥
जमाये परा और वाजे बजाते।
बढाते हुए पॉव, घोडे कुदाते ॥
लिये हाथ बदूक, झडे उडाते
उमग राग मारू विगुल बीच गाते ॥
गरजते, चमकते, धरा को कॅपाते।
बढे सूरमे सामने क्यों हैं आते ॥ २ ॥
अहा! ए वही सूरमे आ रहे हैं।
जो पेरिस में रन के लिये जा रहे हैं ॥

करेंगे वहाँ नाम जौहर दिखा के।
मरेंगे, रहेंगे सरग बीच जाके॥
उन्हों ने सपूती का बीडा उठाया।
हमारे मुहों में है चन्दन लगाया॥१३॥
बता दीजिये ए बडे नाम वाले।
न जिनको पडे अपने प्रानों के लाले॥
जो घायल बनें या पडें दुख के पाले।
तो पत क्यों रहेगी उन्हें ये सम्हाले॥
न भलमन्सी होगी कि उन पर तो फूलें।
पर उनके यतीमों को बेवों को भूलें॥१४॥
बडी बात है देस के काम आना।
यतीम और बेवों के दुख का घटाना॥
बडा भाग है ऐसे अवसर का पाना।
हमें चाहिये हाथ जी से बढ़ाना॥
सब अपने सपूतों का बदला चुकावें।
जहाँ तक बने आज दिन, दें दिखावें॥१५॥
ठनी यह रहे बात जी में हमारे।
टलेंगे नहीं टमदमों के भी मारे॥
यहाँ जितने है छोड कर बूढे, बारे।
बृटिश के लिये होंगे रनसे न न्यारे॥
चने चाव, चिथडे पहन, सब सहेंगे।
मदद करते हम बेकसों की रहेंगे॥१६॥
बृटिश को न जन का न धन का है लाला।
उसे है नहीं शूर वीरों का टाला॥
मगर क्यों रहेगा बना मुख उँजाला।
जो अपना धरम आज हमने न पाला॥

जिसे लोग कहते हैं चुस्ती बला की।
दिखा दो लहू में वह अब भी है बाकी ॥ ७ ॥
लगें तोप गोले, गिरें बम सरों पर।
छिदें तन के रोयें, लहू से रहें तर ॥
बढ़े जाना, पीछे न हटना परग भर।
तुम्हारे लिये हैं सरग के खुले दर ॥
खड़ी अपसरा ह लिये हार न्यारा।
वहाँ आज बहती ह गङ्गा की धारा ॥ ८ ॥
भगे गिर गये पर न गोली चलाना।
दुखी दीन को भूल कर मत सताना ॥
सदा बच्चे औ औरतों को बचाना।
कभी हाथ मत बेबसों पर उठाना ॥
बहक, नाम पुरखाओं का मत डुबोना।
सपूतो! बडा की बडाई न खोना ॥ ९ ॥
सदा बस मरजाद का ध्यान रखना।
चरित द्रोन-भीखम का अभिमान रखना ॥
प्रताप और गोविन्द का मान रखना।
दिलेरो! बृटिश-जाति की शान रखना ॥
रहे रग यह, जिसमें मूछे रँगी हैं।
तुम्हारी ही ओर आज आँखें लगी हैं ॥ १० ॥
सुना जाता है यह बडोंने हमारे।
बजाये ह यूरप में जय के नगारे ॥
सही यह कहा तक है, सिर कौन मारे।
मगर तुम वहाँ लडने जाते हो प्यारे ॥
कहें और क्या, बस सपूती दिखाना।
रहे नाम भारत, सुफल होवे जाना ॥ ११ ॥

जो लोहा बजाने को उकता रहे हैं ।
हमें जिनके तेवर यह बतला रहे हैं ॥
भिड़ेंगे, नहीं काल से भी डरेंगे ।
बड़ा ही धुआँधार रन ये करेंगे ॥ ३ ॥
बुरी चाह जिसकी बहुत ही बढ़ी है ।
सचाई की जिसने ढहा दी गढ़ी है ॥
भलाई की जिसने न पाटी पढ़ी है ।
जिसे आज दिन कुछ सनकसी चढ़ी है ॥
उसे भोर का ये बना देंगे तारा ।
उतारेंगे भूत उसका कर के उतारा ॥ ४ ॥
पड़े काम ये तोप पर जा पड़ेंगे ।
बरसती हुई आग में आ अड़ेंगे ॥
समुन्दर में कूदेंगे, नभ में उड़ेंगे ।
ये जी तोड़कर जरमनों से लड़ेंगे ॥
न पीछे हटेंगे, कटेंगे, मरेंगे ।
बृटिश के लिये क्या नहीं ये करेंगे ॥ ५ ॥
बृटिश रंग में लोग याँ के रँगे हैं ।
उसी के हितू हैं उसी के सगे हैं ॥
उसी की भलाई में जी से लगे हैं ।
यहाँ तक कि रोयें भी प्यारों पगे हैं ॥
जतायेंगे यह ये बहुत जोश में भर ।
न बालों से, सिर तक हथेली में ले कर ॥ ६ ॥
तनिक और भी धुन से बाजे बजाओ ।
सपूतो ! बढ़ो, गर्जते रन में जाओ ॥
निकल सूरमा पन जगत को दिखाओ ।
बँधी धाक पर और रंगत चढ़ाओ ॥

जिसे लोग कहते हैं चुस्ती बला की ।
दिखा दो लहू में वह अब भी है बाकी ॥ ७ ॥
लगें तोप गोले, गिरें बम सरों पर ।
छिदें तन के रोयें, लहू से रहें तर ॥
बढे जाना, पीछे न हटना परग भर ।
तुम्हारे लिये हैं सरग के खुले दर ॥
खडी अपसरा हैं लिये हार न्यारा ।
यहाँ आज बहती है गङ्गा की धारा ॥ ८ ॥
भगे गिर गये पर न गोली चलाना ।
दुखी दीन को भूल कर मत सताना ॥
सदा बच्चे औ औरतों को बचाना ।
कभी हाथ मत देवलों पर उठाना ॥
बहक, नाम पुरखाओं का मत डुबोना ।
सपूतो ! बडों की बडाई न खोना ॥ ९ ॥
सदा बस मरजाद का ध्यान रखना ।
चरित द्रोन-भीखम का अभिमान रखना ॥
प्रताप और गोविन्द का मान रखना ।
दिलेरो ! बृटिश-जाति की शान रखना ॥
रहे रग वह, जिसमें मुझे रँगी हैं ।
तुम्हारी ही ओर आज आँखें लगी हैं ॥ १० ॥
सुना जाता है यह बडोंने हमारे ।
बजाये हैं यूरप में जय के नगारे ॥
सही यह कहा तक है, सिर कोन मारे ।
मगर तुम वहाँ लडने जाते हो प्यारे ॥
कहूँ और क्या, वह सपूती दिखाना ।
रहे नाम भारत, सुफल होवे जाना ॥ ११ ॥

करो चेत कुल-देवते जाग आओ ।
पितर लोग ! तुम भी उमंगों में आओ ॥
बरस फूल, बाजे अनूठे बजाओ ।
कला जागती सब जगत को दिखाओ ॥
बृटिश-जय हो, जरमन बनें कौर काली ।
रहे मुँह की भारत सपूतों के लाली ॥ १२॥
पहाड़ो ! बनो ! धुन को प्यारा बनाओ ।
सुधा और कल कल में नदियो मिलाओ ॥
बड़ी लय से पत्तों को पेड़ो ! बजाओ ।
सबों को मिला कर प्रकृति देवि गाओ ॥
महाराज की जय हो, चढती कला हो ।
बृटिश की बढे धाक भारत भला हो ॥ १३॥
परब आज भारत के लोगो मनाओ ।
निराला समाँ बाँध दो फूल जाओ ॥
दिसाओं नगर गाँव पुर को गुँजाओ ।
मिला कर गला कोटि उनतीस गाओ ॥
बृटिश तेज का और ऊँचा हो पारा ।
हमारे सपूतों का चमके सितारा ॥ १४॥

सब से बड़ी लड़ाई ।

[षट्पद]

अभी आज भी तोप है गडगडाती ।
कई मन के गोले है अब भी गिराती ॥
अभी आज भी है कलेजे कँपाती ।
अभी आज भी है गढों को ढहाती ॥

सची उमग का रग।

अभी आज भी आग उस से वरस कर।
जलाती है पल मारते सैकडों घर
तनिक डालिये आँख यूरप के ऊपर।
तुरत कह उठेंगे यही आह भर कर
नसा किस लिये बेलजियम का वसा घर।
भला किस लिये वह लहू से हुआ तर।
नहीं उसने कुछ भी किसी का विगाडा।
भला किस लिये फिर गया यों उजाडा
नहीं बेलजियम के लिये ही है रोना।
सितम जरमनों से बचा है न कोना।
पडा मान से हाथ कितनों को धोना।
बहुत को पडा अपना धन मान खोना।
गये हाथ ऐसे गुनाहों से हैं भर।
खडे होते है रोंगटे जिनको सुन कर।
नहीं बेकसों का लहू ही बहाया।
गला ही नहीं बेबसों का दबाया॥
नहीं औरतों ही को भूना जलाया।
नहीं तोप पर बच्चों ही को उडाया॥
नहीं जान ही उसने लाखों गवाँई।
नहीं आँसुओं की ही नदियाँ बहाई॥
दया न्याय का भी गला घोंट डाला।
भलाई का उसने दिवाला निकाला॥
बडप्पन का मुंह भी किया उसने काला।
दिया तोड भलमसियों का भी प्याला॥
... ... की ... ।

फरेरा सचाई का जिसने उडाया ।
बहुत से बिगडतों को जिसने बनाया ॥
है दुनिया में ऊँचा बहुत जिसका पाया ।
बडा नाम है न्याय में जिसने पाया ॥
यही आनवाली बृटिश-जाति न्यारी ।
कि जिसको बहुत आदमीयत है प्यारी ॥ ६ ॥
कही विदअतों की मिटाने को माया ।
ठिकाने लगाने को जर्मन की काया ॥
हटाने को सर पर से भूतों का साया ॥
उगलने को है पेट में जो समाया ॥
है ठानी धुआँधार ऐसी लडाई ।
कि पच जायगी सारी जरमन की थाई ॥ ७ ॥
महीने हुए बीस, ठाने लडाई ।
नहीं पर कमी है उमगों मे आई ॥
उडें क्यों न सर पर ही नावें हवाई ।
मगर यह सदा ही पडेगी सुनाई ॥
सचाई उडा देगी सारे गनों को ।
मिला देगें हम धूल में जरमनों को ॥ ८ ॥
अगर आप इगलेड को देखें जाके ।
तो होंगे इसी धुन में बच्चे भी वॉ के ॥
अगर आप देखेंगे मिट्टी उठाके ।
तो वह भी कहेगी उमगों में आके ॥
मेरी गोद में जो कि पलते हैं आते ।
वे हैं धज्जिया जरमनों की उडाते ॥ ९ ॥
हमें हुन वहाँ पर बरसता मिलेगा ।
कमर वॉ हरेक मर्द कसता मिलेगा ॥

कभी वह समुन्दर में धसता मिलेगा।
कभी आग के बीच बसता मिलेगा।
इसी एक रन के लिये ही वहां पर।
हथेली पर सब फिर रहे है लिये सर ॥ १० ॥
बृटिश-जाति है इस तरह की निराली।
फिर हैं साथ में रूस, फ्रांस औ इटाली।
सदा ही रही उसके मुखड़े की लाली।
सदा ही रही जय की हाथों में ताली॥
रहेगा उसीका सदा बोल बाला।
सहेगा बहुत जल्द बैरी कसाला॥ ११॥
बृटिश को न जन का न धन का है लाला।
उसे है नहीं सूर बीरों का टाला।
मगर क्यों रहेगा बना मुख उँजाला।
जो अपना धरम आज हमने न पाला॥
न जो अपनी सरकार के काम आये।
पड़े काम रन में न जो रंग लाये॥ १२॥
बृटिश-जाति ही ने हमें है उबारा।
वही है दयावान राजा हमारा।
उजड़ते हुओं का वही है सहारा।
धरम के लिये है बजा रन नगारा॥
भला किस लिये आज पीछे हटेंगे।
बृटिश-जाति के नाम पर मर मिटेंगे॥ १३॥
रहेगा लहू रंग में जब तक कि जारी।
करेंगे लड़ाई की तब तक तयारी॥
जभी रन में आयेगी बारी हमारी।
दिखा देंगे हम रंगतें अप नीसारी।

नहीं जान ही माल सारा भी धर कर ।
करेंगे बृटिश नाम पर हम निछावर ॥ १४ ॥
दिखादो यही आज ऐ सुनने वालो !
बढ़ो आगे ऐ हिन्द के रहने वालो !
कभी भूलकर पाँव पीछे न डालो ।
सदा का रहा मान अपना सँभालो ।
टलेगा अँधेरा, बढ़ेगा उँजाला ।
रहेगी बृटिश-जाति ही सब से आला ॥ १५ ॥





आँख का आँसू।

[चतुष्पद]

आँख का आँसू ढलकता देख कर।
जी तड़प करके हमारा रह गया॥
क्या गया मोती किसी का है बिखर।
या हुआ पैदा रतन कोई नया॥ १॥
ओस की बूँदें कमल से हैं कढ़ी।
या उगलती बूँद हैं दो मछलियाँ॥
या अनूठी गोलियाँ चाँदी मढ़ी।
खेलती हैं खजनों की लड़कियाँ॥ २॥
या! जिगर पर जो फफोला था पड़ा।
फूट करके वह अचानक बह गया॥
हाय! था अरमान जो इतना बड़ा।
आज वह कुछ बूँद बन कर रह गया॥ ३॥
पूछते हो तो कहो मैं क्या कहूँ।
यों किसी का है निरालापन गया॥
दर्द से मेरे कलेजे का लहू।
देखता हूँ आज पानी बन गया॥ ४॥
प्यास थी इस आँख को जिसकी बनी।
वह नहीं इस को सका कोई पिला॥

आँख के परदों से जो छनकर बहे।
मैल थोड़ा भी रहा जिसमें नहीं॥
बूँद जिसकी आग टपकाती रहे।
दिल जलों को चाहिये पानी वही॥१२॥
हम कहेंगे क्या कहेगा यह सभी।
आग के आँसू न ये होते अगर॥
बावले हम हो गये होते कभी।
सैकड़ों टुकड़े हुआ होता जिगर॥१३॥
है रगों पर रञ्ज का इतना असर।
जब कड़े सदमे कलेजे ने सहे॥
सब तरह का भेद अपना भूल कर।
आँख के आँसू लहू बनकर बहे॥१४॥
क्या सुनावेंगे भला अब भी खरी।
रो पड़े हम पत तुम्हारी रह गई॥
ऐंठ थी जी में बहुत दिन से भरी।
आज वह इन आँसुओं में बह गई॥१५॥
बात चलते चल पड़ा आँसू थमा।
खुल पड़े बड़ी सुनाई रो दिया॥
आज तक जो मैल था जी में जमा।
इन हमारे आँसुओं ने धो दिया॥१६॥
क्या हुआ अंधेर ऐसा है कहीं।
सब गया कुछ भी नहीं अब रह गया॥
ढूँढते हैं पर हमें मिलता नहीं।
आँसुओं में दिल हमारा बह गया॥१७॥
देखकर मुझको सम्हल लो, मत डरो।
फिर सकेगा हाय! यह मुझको न मिल॥

छीन लो, लोगो ! मदद मेरी करो ।
आँख के आँसू लिये जाते हैं दिल ॥ १८ ॥
इस गुलाबी गाल पर यों मत बहो ।
कान से भिड़कर भला क्या पा लिया ॥
कुछ घड़ी के आँसुओ मेहमान हो ।
नाक में क्यों नाक का दम कर दिया ॥ १९ ॥
नागहानी से बचो, धीरे बहो ।
है उमगों से भरा उनका जिगर ॥
यों उमड़ कर आँसुओं सच्ची कहो ।
किस खुशी की आज लाये हो खबर ॥ २० ॥
क्यों न वे अब और भी रो रो मरें ।
सब तरफ उनको अँधेरा रह गया ॥
क्या विचारी डूबती आँखें करें ।
तिल तो था ही आँसुओं में बह गया ॥ २१ ॥
दिल किया तुमने नहीं मेरी कहीं ।
देखते हैं खो रतन मारे गये ॥
जोत आँखों में न कहने को रही ।
आँसुओं में डूब ये तारे गये ॥ २२ ॥
पास हो क्यों कान के जाते चले ।
किस लिये प्यारे कपोलों पर अड़ो ॥
क्यों तुमारे सामने रहकर जले ।
आँसुओ आकर कलेजे पर पड़ो ॥ २३ ॥
आँसुओं की बूँद क्यों इतनी बढ़ी ।
ठीक है तकदीर तेरी फिर गई ॥
थी हमारे जी से पहले ही कढ़ी ।
अब हमारी आँख से भी गिर गई ॥ २४ ॥

आँख का आँसू ढली मुँह पर गिरी।
धूल पर आकर वहीं वह खो गई॥
चाह थी जितनी कलेजे में भरी।
देखता हूँ आज मिट्टी हो गई ॥ २५ ॥

भर गई काजल से कीचड में सनी।
आँख के कोनों छिपी ठढी हुई॥
आँसुओं की बूँद की क्या गत बनी।
वह बरोनी से भी देखो छिद गई ॥ २६ ॥

दिल से निकले अब कपोलों पर चढो।
बात बिगडी क्या भला बन जायगी॥
ऐ हमारे आँसुओ! आगे बढ़ो।
आपकी गरमी न यह रह जायगी॥ २७ ॥

जी बचा तो हो जलाते आँख तुम।
आँसुओ! तुमने बहुत हमको ठगा॥
जो बुझाते हो कहीं की आग तुम।
तो कहीं तुम आग देते हो लगा॥ २८ ॥

काम क्या निकला हुए बदनाम भर।
जो नहीं होना था वह भी हो लिया॥
हाथ से अपना कलेजा थाम कर।
आँसुओं से मुँह भले ही धो लिया ॥ २९ ॥

गाल के उसके दिखा करके मसे।
यह कहा हमने हमें ये ठग गये॥
आज वे इस बात पर इतने हँसे।
आँख से आँसू टपकने लग गये॥ ३० ॥

लाल आँखें कीं, बहुत बिगडे बने।
फिर उठाई दौड कर अपनी छडी॥

वैसही अब भी रहे हम तो तने।
    आँख से यह बूँद कैसी ढल पड़ी ॥ ३१
बूँद गिरते देखकर यों मत कहो।
    आँख तेरी गड़ गई या लड़ गई ॥
जो समझते हो नहीं तो चुप रहो।
    ककरी इस आँख में है पड़ गई ॥ ३२।
है यहाँ कोई नहीं धूआँ किये।
    लग गई मिरचें न सरदी है हुई ॥
इस तरह आँसू भर आये किस लिये।
    आँख में ठंढी हवा क्या लग गई ? ॥ ३३ ॥
देख करके और का होते भला।
    आँख जो बिन आग ही यों जल मरे ॥
दूर से आँसू उमड़ कर तो चला।
    पर उसे कैसे भला ठंढा करे ॥ ३४ ॥
पाप करते हैं न डरते हैं कभी।
    चोट इस दिल ने अभी खाई नहीं ॥
सोच कर अपनी बुरी करनी सभी।
    यह हमारी आँख भर आई नहीं ॥ ३५ ॥
है हमारे औगुनों की भी न हद।
    हाय ! गरदन भी उधर फिरती नहीं ॥
देख करके दूसरों का दुख दरद।
    आँख से दो बूँद भी गिरती नहीं ॥ ३६ ॥
किस तरह का वह कलेजा है बना।
    जो किसीके रंज से हिलता नहीं ॥
आँख से आँसू छना तो क्या छना।
    दर्द का जिसमें पता मिलता नहीं ॥ ३७ ॥

दान के सामान सब देखे गये ।
देख डालीं डालियाँ छूही रँगी ॥
जाँच हमने की चढावे की बहुत ।
मतलबों की थी मुहर सब पर लगी ॥ १० ॥
जगलों में देख ली धूनी रमी ।
जोग ही में बाल कितनों का पका ॥
क्या हुआ घर से किनारे हो गये ।
कौन मतलब से किनारा कर सका ॥ ११ ॥
है बताती वीर की गरदन नपी ।
है सती की भी चिता कहती यही ॥
है यही धुन जौहरों से भी कढी ।
आँच मतलब की नहीं किसने सही ॥ १२ ॥
जाति के हित की सभी तानें सुनी ।
देश हित के भी लिये सब राग सुन ॥
लोक हित की गिटकिरी कानों पड़ी ।
पर हमें सब में मिली मतलब की धुन ॥ १३ ॥
रग ढग उदारता देखा गया ।
रगतें सारी दया की देख लीं ॥
साधुता के पेट की बातें सुनी ।
मतलबों को साथ ले कर सब चलीं ॥ १४ ॥
कौन उसकी बोल पर रीझा नहीं ।
कौन सुनता है नहीं उसकी कही ॥
सब जगह सब काल सारे काम में ।
मतलबों की बोलती तूती रही ॥ १५ ॥

लीजिये यह जान उतनी ही अधिक ।
मतलबों की चाशनी उस पर चढ़ी ॥ ३ ॥
प्यार डूबे लोग कहते हैं उमग ।
जो कहो अपना कलेजा काढ दूँ ॥
पर अगर वे निज कलेजा काढ दें ।
तो कहेगा वह कढ़ा मतलब से हूँ ॥ ४ ॥
और का गिरते पसीना देख कर ।
जो कि अपना हैं गिरा देते लहू ॥
वे कहें कुछ, पर सदा उस में मिली ।
बूझ वालों को किसी मतलब की बू ॥ ५ ॥
एक परउपकार ही के वास्ते ।
था जहाँ झंडा बहुत ऊँचा गड़ा ॥
जो गड़ा कर आँख देखा, तो वहीं ।
था छिपा चुपचाप मतलब भी खड़ा ॥ ६ ॥
थे भलाई के जहाँ डेरे पड़े ।
थी जहाँ पर हाट भलमसी लगी ॥
घूम फर देखा वहीं मतलब खड़ा ।
आँख करके बन्द करता था ठगी ॥ ७ ॥
देखता ही दोस्ती का रँग रहा ।
जी मुरौवत का टटोला ही किया ॥
कब बता दो प अँधेरे में चलीं ।
हाथ में जब था न मतलब का दिया ॥ ८ ॥
डूब करके दूसरों के रंग में ।
जो कहीं कोई कली हित की खिली ॥
फूल जो मुँह से किसी के भी झड़ा ।
मतलबों की ही महँक उसमें मिली ॥ ६ ॥

जो लाल आँख पति को है कभी दिखाती ।
जो छल करके पति से है पाप कमाती ॥
जो झूठ मूठ पति से है बात बनाती ।
जो कभी पराये पति को है पतियाती ॥
उसकी परतीत न यहाँ वहाँ रहती है ।
नारी का देवता जग में एक पती है ॥
परपति से अहल्या ने जो नेह बढ़ाया ।
पत्थर हो कर सब अपना भरम गँवाया ॥
सीता सावित्री ने जो पति-गुन गाया ।
अबतक उनका जस सब जग में है छाया ॥
पुजती पति सेवा ही से पार्वती है ।
नारी का देवता जग में एक पती है ॥



जी की कचट ।

[षट्पद]

किस लिये आज मेरा जी है घबराया ।
आँसू आँखों में क्यों कर है भर आया ॥
सबका मन है किस लिये आज मुरझाया ।
किस लिये अँधेरा सभी ओर है छाया ॥
सब लोग किस लिये आज आह करते हैं ।
रोते हैं औ ठंढी साँसें भरते हैं ॥ १ ॥
किस लिये दिशायें आज नहीं हैं वैसी ।
यह धूप हो गई है धुँधली क्यों ऐसी ॥
वह चमक रही क्यों नहीं चाहिये जैसी ।
सूरज की गत हो गई आज है कैसी ॥
क्यों बार बार इतना वह थर्राता है ।
किस लिये वैस ही डूब नहीं जाता है ॥ २ ॥
यह चिड़ियाँ क्यों नहिं आज चहचहाती हैं ।
किस लिये चुप हुई बैठी दिखलाती हैं ॥
उड़ती भी हैं क्यों नहीं क्या जनाती हैं ।
अपने खोंतों की ओर क्यों न जाती हैं ॥

जिससे इनकी हो गई दसा है ऐसी।
इनके ऊपर है आज बीतती कैसी ॥ ३ ॥
वह पेड़ों में रह गई न क्यों हरियाली।
पत्तियाँ हो गई हैं उनकी क्यों काली ॥
झुक गई आप ही क्या है उनकी डाली।
किस लिये बेलियों की भी रही न लाली ॥
लुट गई आज क्यों इनकी न्यारी सपत।
क्यों रही नहीं फल फूलों में वह रंगत ॥ ४ ॥
किस लिये घिर रही है इतनी अँधियाली।
है रात आज की, तो देखो उँजियाली ॥
किस लिये चाँदनी रही नहीं मनवाली।
है किसने काली छींट चाँद पर डाली ॥
क्यों नहीं चमकते हैं वैसे ही सारे।
इतने धुँधले हो गये आज क्यों तारे ॥ ५ ॥
क्या कहूँ, नहीं हम से कुछ भी कह जाता।
मुँह को है कहते हुये कलेजा आता ॥
जिसका झंडा सब से ऊँचा फहराता।
भलमनसाहत में जिसे न कोई पाता ॥
उठ गई आज विकटोरिया वही मेरी।
है घिरी इसी से चारों ओर अँधेरी ॥ ६ ॥

उलहना।

[षट्पद]

वही हैं मिटा देते कितने कसाले।
वही हैं बड़ों की बड़ाई सम्हाले ॥

वही हैं बडे औ भले नाम वाले ।
वही हैं अँधेरे घरों के उँजाले ॥
सभी जिनकी करतूत होती है ढब की ।
जो सुनते हैं, बातें ठिकाने की सब की ॥ १ ॥
बिगड़ती हुई बात वे हैं बनाते ।
धधकती हुई आग वे हैं बुझाते ॥
बहकतों को वे हैं ठिकाने लगाते ।
जो ऐंठे हैं उनको भी वे हैं मनाते ॥
कुछ ऐसी दवा हाथ उनके है आई ।
कि धुल जाती है जिससे जी की भी काई ॥ २ ॥
भलाई को वे हैं बहुत प्यार करते ।
खरी बात सुनने से वे हैं न डरते ॥
कभी वाजिबी बात से हैं न टरते ।
सचाई का दम बेधड़क वे हैं भरते ॥
वे बारीकियों में भी हैं पैठ जाते ।
बहुत डूब वे तह की मिट्टी हैं लाते ॥ ३ ॥
नहीं करते वे देश हित से किनारा ।
नहीं मिलता अनबन को उनसे सहारा ॥
बड़ी धुन से बजता है उनका दुतारा ।
सुनाता है जो मेल का राग प्यारा ॥
नहीं नेकियाँ वे किसीकी भुलाते ।
नहीं फूट की आग वे हैं जलाते ॥ ४ ॥
जो कुढ़ता है जी तो उसे हैं मनाते ।
जो उलझन हुई तो उसे हैं मिटाते ॥
जो हठ आ पड़ा तो उसे हैं दबाते ।
किसीके बतोलों में वे हैं न आते ॥

सदा उनकी होती है रंगत निराली ।
बनी रहती है उनके मुखड़े की लाली ॥ ५ ॥
यही सोच ऐ उर्दू के जाँ निसारो ।
कहूँगी मैं कुछ लो सुनो औ विचारो ॥
तुम्हारी ही मैं हूँ मुझे मत बिसारो ।
मैं हिन्दी हूँ मुझको न जी से उतारो ।
नहीं कोसने या झगड़ने हूँ आई ।
सहमते हुए मैं उलहना हूँ लाई ॥ ६ ॥
मुझे बात यह आज कल है सुनाती ।
जचा हूँ न मैं औ न हूँ प्यारी थाती ।
गँवारी हूँ मैं और हूँ अनसुहाती ।
पढ़ों को है मेरी गठन तक न भाती ।
मैं रूपी हूँ जीती हूँ करके बहाने ।
नहीं एक भी कल है मेरी ठिकाने ॥ ७ ॥
तनिक जो समझ बूझ से काम लेंगे ।
तनिक आँख जो और ऊँची करेंगे ॥
सम्हलकर सचाई की जो राह देंगे ।
मैं कहती हूँ तो आप ही यह कहेंगे ॥
कभी है न वाजिब मुझे ऐसा कहना ।
भला है नहीं मुझ से यों बिगड़े रहना ॥ ८ ॥
जिसे मैंने देहली में जनकर जिलाया ।
जिसे लखनऊ ला अनोखी बनाया ।
जिसे लाड से पाला पोसा, खेलाया ।
हिलाया मिलाया, कलेजे लगाया ॥
हमें आप मानें जो नाते उसी के ।
तो फिर यों फफोले न फोड़ेंगे जी के ॥ ९ ॥

हमींसे है उरदू का जग में पसारा ।
हमींसे है उसका बना नाम प्यारा ॥
हमींसे है उसका रहा रंग न्यारा ।
हमींसे है उसका चमकता सितारा ॥
उसी दिन उसे पारसी जग कहेगा ।
न जिस दिन हमारा सहारा रहेगा ॥ १० ॥
भला मैंने उरदू का क्या है बिगाड़ा ।
बता दीजिये कब बनी उसका टाड़ा ॥
बसा उसका घर मैंने कब है उजाड़ा ।
कहाँ कब जमा पाँव उसका उखाड़ा ॥
खुले जी से उसके सदा काम आई ।
कभी मैंने उसको न समझा पराई ॥ ११ ॥
बरहमन के बेटे बड़े मन लुभाते ।
नसीम औ रतन नाथ, जिनसे थे नाते ॥
जो वे मुझमें ये पारसीपन खपाते ।
रहे मुझमें जो उसके जुमले मिलाते ॥
तो उनको नहीं मैंने छड़ियाँ लगाईं ।
न डाँटें बताईं, न आँखें दिखाईं ॥ १२ ॥
मुसल्मान हो पा बहुत ऊँचा पाया ।
रहीम और खुसरो ने जो जस कमाया ।
मुझे मेरे ही रंग में, जो दिखाया ।
मुझे मेरे फूलों ही से जो सजाया ॥
तो मैंने न गजरे गले बीच गेरे ।
नहीं फूल उनके सिरों पर बखेरे ॥ १३ ॥
बड़े भाव से आरती कर हमारी ।
खिली चाँदनी सी छटा वाली न्यारी ॥

जो सूर और तुलसी ने कीरत पसारी।
श्रमर जो हुए देव, केशव, बिहारी।
बड़ा जस, बहुत मान, सच्ची बड़ाई।
तो रसखान औ जाइसी ने भी पाई॥ १४॥
कहे देती हूँ बात यह मैं पुकारे।
मुसलमान हिन्दू हैं दोनों हमारे॥
ये दोनों ही हैं मुझको जी से भी प्यारे।
ये दोनों ही हैं मेरी आँखों के तारे॥
नहीं इनमें कोई है मेरा 'बेगाना।
सदा जी से दोनों ही को मैंने माना॥ १५॥
गुसाँई ने जिसमें रमायन बनाई।
कोई पोथी जितनी न छपती दिखाई।
कला जिसकी है आज देसों में छाई।
घरों बीच जिसने है गंगा बहाई॥
सुनाती हूँ जिसमें मैं अपना उलहना।
सितम है उसे कोई बोली न कहना॥ १६॥
जो है देस में सब जगह काम आती।
बहुत लोगों की जो है बोली कहाती॥
जो है झोपड़े से महल तक सुनाती।
गठन जिसकी है नित नये रंग लाती॥
कठिन है बिना जिसके घर में निबहना।
उसे क्या सही है गई बीती कहना॥ १७॥
जिसे सूर ने दे दिया रंग न्यारा।
बड़े ढब से केशव ने जिसको सँवारा॥
बिहारी ने हीरों से जिसको सिंगारा।
पिन्हाया जिसे देव ने हार न्यारा॥

उसे अनसुहाती गँवारी बताना ।
कहूँगी मैं है उलटी गङ्गा बहाना ॥ १८ ॥
बहुत राजों ने पाँव जिसका पखारा ।
गले में कई हार अनमोल डाला ॥
जिसे वार तन मन उन्होंने उभारा ।
रही उनकी जो सब सुखों का सहारा ॥
कुढंगी बुरी क्यों उसे हैं बनाते ।
रतन जिसमें हैं सैकड़ों जगमगाते ॥ १९ ॥
सदा मीर का ढंग है जी लुभाता ।
बहुत सादापन दाग का है सुहाता ॥
कलाम इनका है आप लोगों को भाता ।
कभी मोह लेता कभी है रिझाता ॥
बता देती हूँ, है यही बात न्यारी ।
बहुत उसमें होती है रंगत हमारी ॥ २० ॥
उमग आप उरदू को दिन दिन बढ़ावें ।
उसे वे बहा मोतियों से सजावें ॥
अछूते, खिले फूल उसमें खिलावें ।
उसे हार भी नौरतन का पिन्हावें ॥
मैं फूली फली का बनूगी नमूना ।
कलेजा मेरा देखकर होगा दूना ॥ २१ ॥
हरा देखकर पेड़ अपना लगाया ।
भला कौन है जो न फूला समाया ॥
जिसे मैंने अपना नमूना बनाया ।
जिसे मैंने सौ सौ तरह से हिलाया ॥
उसे देख फूली फली क्यों जलूँगी ।
कलेजे लगाकर बलायें मैं लूँगी ॥ २२ ॥

मगर आप से मुझको इतना है कहना।
भली बात है सब से हिल मिल के रहना॥
कभी पोत का भी बहुत छोटा गहना।
उमग कर नहीं जो सकें आप पहना॥
तो कह बात लगती मुझे मत दुखावें।
न चलनी हमारा कलेजा बनावें॥ २३॥
बहुत कह चुकी अब नहीं कुछ कहूँगी।
कहाँ तक बनूँ ढीठ, अब चुप रहूँगी॥
सही मानिये आप की सब सहूँगी।
मगर बात इतनी सदा ही चहूँगी॥
कभी झूठे झगड़ों में पड मत उलझिये।
नहीं मा तो धाई ही मुझको समझिये॥ २४॥
प्रभो! तू बिगड़ती हुई सब बना दे।
अँधेरे में तू जोत न्यारी जगा दे॥
घरों में भलाई का पोधा उगा दे।
दिलों में भलाई की धारा बहा दे॥
रहे प्यार आपस का सब ओर फैला।
किसीसे किसीका न जी होवे मेला॥ २५॥

सबल और निबल।

[चौपदे]

मर मिटे, पिट गये, सहा सब कुछ।
पर निबल की सुनी गई न कहीं॥
है सबल के लिये बनी दुनिया।
है निबल का यहाँ निबाह नहीं॥ १॥

जान पर बीतती किसी की है।
　　और कोई है जी को बहलाता॥
एक को धूल में मिला करके।
　　दूसरा है कमाल दिखलाता॥ २॥
घर किसी का उजाड़ होता है।
　　और बनते महल किसी के हैं॥
है किसी गेह का दिया बुझता।
　　औ कहीं दीये जलते घी के हैं॥ ३॥
दूसरों का बिगाड़ करके रग।
　　रग अपना सभी जमाते हैं॥
एक के नाम को मिटा करके।
　　दूसरे लोग नाम पाते हैं॥ ४॥
क्या कहें बात हम अमीरों की।
　　आप होंगे दुखी उसे सुन के॥
बेकसों का गला दबा देना।
　　खेल है बायें हाथ का उनके॥ ५॥
क्यों न दानों बिना मरे कोई।
　　क्यों न अपना सभी गँवा बैठे॥
पर उन्हें क्या, करेंगे मनमानी।
　　जब कि पुतले सितम कभी ऐंठे॥ ६॥
काम से काम है उन्हें रहता।
　　वे भला कब हुए किसीके हैं॥
और पिसने को पीस देना ही।
　　नित्त के चोचले धनी के हैं॥ ७॥
रत्न न्यारे मोल का जितना अधिक।
　　राज सिंहासन मुकुट में हो लगा॥

ठीक कहते हैं कि उतना ही अधिक।
 वह लहू से दूसरों के है रँगा ॥ ८ ॥
चैन कितने लोग पाते ही नहीं।
 जान कितनी जो न हाथों से गई ॥
नित कलेजा सैकड़ों कुचले बिना।
 पाँव सीधे पड़ नहीं सकते कई ॥ ९ ॥
क्या कहें, जी है धड़क उठता बहुत।
 फूँक और उजाड़ घर फूले फले।
लालसायें राज या धन मान की।
 आज भी हैं रेततीं लाखों गले ॥ १० ॥
बेबसी जिन पर बरसती है बहुत।
 आँख से आँसू बहा करके घड़ों ॥
गेंद जैसे हैं लुढ़कते धूल में।
 ठोकरें खा खा गिरे सिर सैकड़ों ॥ ११ ॥
छिन गये सुख चाह मिट्टी में मिली।
 औ कलेजों ने बुरी ठेसें सहीं ॥
लोग लाखों लुट गये सरबस गया।
 औ हुआ क्या? एक की बातें रहीं ॥ १२ ॥
आप आँखें खोल करके देखिये।
 आज जितनी जातियाँ हैं सिर धरी ॥
पेट में उनके पड़ी दिखलायेंगी।
 जातियाँ कितनी सिसिकती या मरी ॥ १३ ॥
दूसरों की पीर कब समझी गई।
 और के दुख की हुई परवाह कब ॥
बात कहते गरदनें कितनी नपीं।
 भौं चढ़ा बैठा कोई बे पीर जब ॥ १४ ॥

जी सभी का माँस से ही है बना।
है कलेजा दूसरों के पास भी॥
कौन लुट जाता नहीं निजता गँवा।
पर समझता यह नहीं कोई कभी॥ १५॥

एक घबराया हुआ।

मेरा जी क्यों घबराता है।
दोनों आँखों में रह रह कर क्यों आँसू भर आता है।
पीर कलेजे में होती है, क्यों कुछ भी नहिं भाता है॥
ए हरि औध, हमारे मन को कौन कहाँ ले जाता है॥ १॥

[गजल]

चाह का क्या ढग है कुछ भी कहा जाता नहीं।
भेद भी इसका समझ में कुछ कभी आता नहीं॥
जी कहाँ क्यों कर किसीके सग कब मेरा गया।
ढूँढते हैं सब, पता उसका कोई पाता नहीं॥
तडपते, रोते, कलपते, आह भी भरते हैं हम।
चैन पाने का कोई भी ढग दिखलाता नहीं॥
छोड कर जाती कहाँ है ए हमारी सुध, हमें।
क्या रहा तुझ से मेरा कोई कभी नाता नहीं॥
मुँह दिखाने क्यों नहीं बनता, भला क्या होगया।
कौन है ऐसा जो मुँह की है यहाँ खाता नहीं॥
हम लगाते हैं इसे पर यह नहीं लगता कहीं।
जी उचट ऐसा गया, कुछ भी इसे भाता नहीं॥
क्या हुआ जो ऊबता रहता है जी मेरा बहुत।
पेंच में पड करके इसके कौन घबराता नहीं॥

जो न तू मेरी सुनेगा तो सुनेगा कौन फिर ।
रह गया कोई सहारा ऐ मेरे दाता नहीं ॥२॥

सब दिन बराबर नहीं जाता ।

[लावनी]

जग का कुछ ऐसा ही है ढंग दिखाता ।
एक रंग किसीका कभी नहीं दिन जाता ॥
जिस से पौधों ने समा निराला पाया ।
जिसने परगस था औरों को अपनाया ॥
जिसके ऊपर था जी से भौंर लुभाया ।
बहती बयार को भी जिसने महकाया ॥
वह खिला सजीला फूल भी है मुरझाता ।
एक रंग किसीका कभी नहीं दिन जाता ॥ १ ॥
देखा जिसको जग-बीच ध्वजा फहराते ।
राजे जिसके पाँवों पर सीस नवाते ॥
सुन कर जिसका नाम वीर घबराते ।
जिसकी कीरति सब ओर सभी थे गाते ॥
अब पड़ा हुआ वह धूल में है बिललाता ।
एक रंग किसीका कभी नहीं दिन जाता ॥ २ ॥
पड़ते थे जिनके तीन लोक में डेरे ।
यम भी डरता था आने जिनके नेरे ॥
थे और देवते जितने जिनके चेरे ।
काँपता मदन जिनके भौंहों के फेरे ॥

उस रावन को था गीध नोच कर खाता।
एक रंग किसीका कभी नहीं दिन जाता॥ ३॥
कब तक हम ऐसी कहें कहानी।
अपने जी में तू समझ सोच रे प्रानी॥
क्यों धरम छोड़ कर करता है मनमानी।
तू क्यों बिगाड़ता है अपना पत, पानी॥
है पल भर में धन, योवन सभी बिलाता।
एक रंग किसीका कभी नहीं दिन जाता॥ ४॥

हमें चाहिये।

[रोला]

कपड़े रँग कर जो न कपट का जाल बिछावे।
तन पर जो न विभूत पेट के लिये लगावे॥
हमें चाहिये सच्चे जी वाला वह साधू।
जाति देस जग हित कर जो निज जनम बनावे॥ १॥
देस काल को देख चले निजता नहिं खोवे।
सार वस्तु को कभी पखडों में न डबोवे॥
हमें चाहिये समझ बूझ वाला वह पंडित।
आँखें ऊँची रखे कूपमंडूक न होवे॥ २॥
आँखों को दे खोल, भरम का परदा टाले।
जी का सारा मैल कान को फूँक निकाले॥
गुरू चाहिये हमें ठीक पारस के ऐसा।
जो लोहे को, कसर मिटा सोना कर डाले॥ ३॥
टके के लिये धूल में न निज मान मिलावे।
लोभ लहर में भूल न सुरुचि सुरीति बहावे॥

सवेरा।

उठो लाल आँखों को खोलो।
पानी लाई हूँ, मुख धो लो॥
बीती रात कमल सब फूले।
उनके ऊपर भौंरे भूले॥
चिड़ियाँ चहक उठीं पेड़ों पर।
बहने लगी हवा अति सुन्दर॥
नभ में न्यारी लाली छाई।
धरती ने प्यारी छवि पाई॥१॥
ऐसा सुन्दर समय न खोवो।
मेरे प्यारे अब मत सोवो॥
भोर हुआ सूरज उग आया।
जल में पड़ी सुनहली छाया॥
मिटा अँधेरा हुआ उँजाला।
किरनों ने जीवन सा डाला॥
जाग जगमगा उठा जगत सब।
मेरे लाल जाग तू भी अब॥२॥
जागो प्यारे हुआ सवेरा।
मैं देखूँ हँसता मुख तेरा॥
आँखें खोल कमल विकसावो।
होंठ हिला कर फूल खिलावो॥
ठुमुक ठुमुक आँगन में डोलो।
किलक बोलियाँ मीठी बोलो॥
मुझे लुभा लो जी उमगा कर।
रुनुक झुनुक पैंजनी बजा कर॥३॥

रग रग के फूल खिलाये ।
जिनके ऊपर भौंर लुभाये ॥
बडा अनूठा वो मनभाया ।
चिडियों को गाना सिखलाया ॥
हरे भरे पत्ते वो डाली ।
पेडों को दी है हरियाली ॥
तुम्हें उसीने आँखें दी हैं ।
जिन पर पलकें लगी हुई है ॥
कान दिये वो नाक बनाई ।
जीभ उसीसे तुमने पाई ॥
हाथ पाँव वो बदन तुम्हारा ।
है उसका ही रचा सँवारा ॥
लडको ! तुम उसका गुन गावो ।
उसको पूजो, उसे मनावो ॥
इससे होगा भला तुम्हारा ।
पावोगे दुख से छुटकारा ॥

सवेरा ।

उठो लाल आँखों को खोलो ।
पानी लाई हूँ, मुख धो लो ॥
बीती रात कमल सब फूले ।
उनके ऊपर भौंरे भूले ॥
चिड़ियाँ चहक उठीं पेड़ों पर ।
बहने लगी हवा अति सुन्दर ॥
नभ में न्यारी लाली छाई ।
धरती ने प्यारी छवि पाई ॥ १ ॥
ऐसा सुन्दर समय न खोवो ।
मेरे प्यारे अब मत सोवो ॥
भोर हुआ सूरज उग आया ।
जल में पड़ी सुनहली छाया ॥
मिटा अँधेरा हुआ उँजाला ।
किरनों ने जीवन सा डाला ॥
जाग जगमगा उठा जगत सब ।
मेरे लाल जाग तू भी अब ॥ २ ॥
जागो प्यारे हुआ सवेरा ।
मैं देखूँ हँसता मुख तेरा ॥
आँखें खोल कमल विकसावो ।
होंठ हिला कर फूल खिलावो ॥
ठुमुक ठुमुक आँगन में डोलो ।
किलक बोलियाँ मीठी बोलो ॥
मुझे लुभा लो जी उमगा कर ।
रुनुक झुनुक पंजनी बजा कर ॥ ३ ॥

प्यार-पञ्चक।

मेरे प्यारे बेटे आवो ॥

मीठी मीठी बातें कह के
मेरे जी की कली खिलावो ॥
उमग उमग कर खेलो, कूदो,
लिपट गले से मेरे आवो ॥
इन मेरी दोनों आँखों में
हँस कर सुधा बूँद टपकावो ॥ १ ॥

प्यारे चिनगारी मत खेलो ॥

फेंको, फेंको, उसको फेंको,
मुझसे एक खेलौना ले लो ॥
फेंके देते हो क्यों टोपी ?
उसको अपने शिर पर दे लो।
देखो रोते हैं ए लड़के,
तुम न छीन इनके गहने लो ॥ २ ॥

तू ने क्यों नन्हीं को मारा ॥

कितनी है यह भोली भाली,
कितना है उसका मुख प्यारा।
दया नहीं क्या होती तुझको ?
बही देख आँसू की धारा ॥

उसका जी भी तुझ सा ही है
क्या इतना भी नहीं विचारा
वह है छोटी वहिन तुम्हारी,
क्यों न उसे तुमने पुचकारा ?
जा कर गले लगा लो उसको
कहना मानो लाल हमारा ॥ ३ ॥

प्यारे ! लड़कों को न रुलावो ॥

हँसी खेल के ये पुतले हैं ।
तनिक न तुम इनको कलपावो॥
प्यार करो, मुख चूमो, मीठी
बातों से इनको बहलावो ।
खिले हुए सुन्दर मुखड़े को
मत कुम्हलाया फूल बनावो ॥ ४ ॥

बच्चों को तुम जी से चाहो ॥

प्यार करो, आँखों पर ले लो,
पुलकित हो हो उन्हें सराहो ॥
उनसे मीठी बोली बोलो,
जिसमें अनुपम लाड भरा हो ।
जिससे वे ऐसे विकसित हों,–
जैसे कोई कमल खिला हो ॥ ५ ॥

माता का प्यार।

मेरे लाल हमारे प्यारे।
ऐ मेरी आँखों के तारे।
तेरा मुखड़ा भोला भाला।
सुन्दरता-साँचे में ढाला॥
कहीं चन्द्रमा से न्यारा है।
खिले कमल ऐसा प्यारा है।
उसे देख नवनिधि हूँ पाती।
मैं हूँ फूली नहीं समाती॥ १॥
मेरे प्यारे बेटे आ जा।
मीठी मीठी बात सुना जा।
रस इन कानों में बरसा जा।
सुधा बूँद इनमें टपका जा॥
तेरी बातें हैं अति प्यारी।
उसमे है मिसरी सी डारी।
तेरी बातें तुतली, भोली।
है अनमोल मोतियों तोली॥ २॥
प्यारे तू है भोला भाला।
मेरी आँखों का उँजियाला।
नई पौध उपजाने वाला।
कीरत-बेलि उगाने वाला॥
भरा लबालब, बड़ा निराला।
तू है मधुर रसों का प्याला।
जिनकी महक बहुत है आला।
तू है उन फूलों का थाला॥ ३॥

तू है ऐसा लाल हमारा।
जो सब लालों से है न्यारा।
तू है ऐसा रतन हमारा।
जिस पर सब रतनों को वारा॥
तू है खिला गुलाब हमारा।
सब फूलों से सजा सँवारा।
तू है सुन्दर चाँद हमारा।
सब चाँदों से कोमल प्यारा॥ ४ ॥
तेरे मुखडे का उँजियाला।
है अँधियाला खोने वाला।
तेरे हाथों की यह लाली।
है उलझी सुलझाने वाली॥
तेरी यह प्यारी किलकारी।
हरती है आकुलता सारी।
तेरा मद मद मुसकाना।
है जादू करता मन माना॥ ५ ॥
तू उस सीपी का है मोती।
जिसकी कान्ति दिव्य है होती।
तू है हीरा उस थल वाला।
जहाँ रहे सब काल उँजाला॥
तू है खिला कमल उस सर का।
जहाँ राज है सरस मधुर का।
नहिं कुम्हिला सकता जिसका दल।
तू उस तरु का है सुदर फल॥ ६ ॥
प्यारे तू है उसकी कला।
सदा रहा जो फूला फला।

तू है उस साँचे में ढला ।

जिसे छू नहीं सकती बला ॥

तू उस पलने में है पला ।

जो है बड़ा अनूठा भला ।

तू उस पथ पर होकर चला ।

जहाँ अलौकिक दीपक बला ॥ ७ ॥

प्यारे तू है उसकी थाती ।

जिसका है दुनिया जस गाती ।

तू उस बड़ी जाति का है जन ।

जिसका जी है जड़ी सजीवन ॥

तू है उस ऊँचे कुल वाला ।

जिसने जग में किया उँजाला ।

तू है उस पारस ही का कन ।

जिसे छू हुआ लोहा, कंचन ॥ ८ ॥

जाति सकल आशाओं का थल ।

प्यारे है तेरा मुख कोमल ।

जन है वह जी खोल उमगती ।

तब है तेरा ही मुँह तकती ॥

उसकी आँख लालसा वाली ।

तेरे मुख की है मतवाली ।

रहती है रुचि भँवरी भूली ।

मुख छवि देखि कली सी फूली ॥ ९ ॥

रात का सोना।

आ री नींद लाल को आ जा।
उसको करके प्यार सुला जा।
तुझे लाल हैं ललक बुलाते।
अपनी आँखों पर निठलाते॥
तेरे लिये बिछाईं पलकें।
बढ़ती ही जाती हैं ललकें।
क्यों तू है इतनी इठलाती।
आ मैं भी हूँ तुझे बुलाती॥ १॥
गोद नींद की है अति न्यारी।
फूलों से है सजी सँवारी।
उसमें बहुत नरम मन भाई।
रूई की है पहल जमाई॥
बिछे बिछौने हैं मखमल के।
बड़े मुलायम सुन्दर हलके।
जो तू लाल चाह उसकी कर।
तो तू सो जा आँख मूँद कर॥ २॥
मीठी नींदों प्यारे सोवो।
सोने की पुतली मत खोवो।
उसकी करतूतों के ही बल।
ठीक ठीक चलती है तन कल॥
नींद हाथ में है वह डली।
चखा जिसे पर भूख न टली।
उसकी आँखें हैं रस भरी।
वह है सरग लोक की परी॥ ३॥

गिलहरी ।

कहते जिसे गिलहरी है सब ।
सभी निराले उसके हैं ढब ॥
पेड़ों से नीचे है आती ।
फिर पेड़ों पर है चढ़ जाती ॥
कुतर कुतर फल को है खाती ।
बच्चों को है दूध पिलाती ॥
उसकी रंगत भूरी, कारी ।
आँखों को लगती है प्यारी ॥
होती है यह इतनी चंचल ।
कहीं नहीं इसको पड़ती कल ॥
उछल कूद में है यह जैसी ।
दौड़ धूप में भी है वैसी ॥
बैठी इस धरती के ऊपर ।
दोनों हाथों में कुछ ले कर ॥
जब वह जल्दी से है खाती ।
तब है कैसी भली दिखाती ॥
चिकना चिकना रोआँ इसका ।
लुभा नहीं लेता जी किसका ॥
मत तुम इसको ढेले मारो ।
जी में इतनी बात विचारो ॥
कहीं इसे जो लग जावेगा ।
तो इसका जी दुख पावेगा ॥
अब तक सब ने है यह माना ।
जी का अच्छा नहीं दुखाना ॥

दिल टटोलो ।

क्या न होता है उसमें दिल उजला ।
मैले कपड़े से क्यों झिझकते हो ॥
देख उजला लिबास मत भूलो ।
दिल मैला कहीं न उसमें हो ॥ १ ॥

जो न सोने के कन उसे मिलते ।
न्यारियाँ राख किस लिये धोता ॥
मत रुको देख कर फटे कपड़े ।
लाल गुदड़ी में क्या नहीं होता ॥ २ ॥

है किसी काम का न रंग गोरा ।
जो दिखाई पड़ा हृदय काला ॥
है बड़ा ही अमोल काला रंग ।
मिल गया होय जो हृदय आला ॥ ३ ॥

क्या हुआ उच्च वंश में जन्मे ।
जो ऊँचा जी में पाप का कूँचा ॥
नीच कुल का हुए न कुछ बिगड़ा ।
जो हृदय हो महान औ ऊँचा ॥ ४ ॥

कब भला ठाट है अमीरी का ।
पैंठ जिसमें है विकाश पाती ॥
सादगी कहीं भली है, जिसमें—
है सुजनता झलक दिखा जाती ॥ ५ ॥

जो पञ्चम सुर में है गाती ।
वह ही है कोयल कहलाती ॥
जब जाड़ा कम हो जाता है ।
सूरज थोड़ा गरमाता है ॥
तब होता है समा निराला ।
जी को बहुत लुभाने वाला ॥
हरे पेड़ सब हो जाते हैं ।
नये नये पत्ते पाते हैं ॥
कितने ही फल बो फलियों से ।
नई नई कोंपल कलियों से ॥
वह कुछ ऐसे लद जाते हैं ।
बहुत भले जो दिखलाते हैं ॥
रंग रंग के प्यारे प्यारे ।
फूल फूल जाते हैं सारे ॥
बसी हवा बहने लगती है ।
दिसा सब महँकने लगती है ॥
तब यह होती है मतवाली ।
कूक कूक कर डाली डाली ॥
अजब समा दिखला देती है ।
सब का मन अपना लेती है ॥
लड़को! अब अपना मुँह खोलो ।
तुम भी मीठी बोली बोलो ॥
इससे कितने सुख पावोगे ;
सबके प्यारे, बन जावोगे ॥

दिल टटोलो ।

क्या न होता है उसमें दिल उजला ।
    मैले कपड़े मे क्यों झिझकते हो !
देख उजला लिबास मत भूलो ।
    दिल मैला कहीं न उसमें हो ॥ १ ॥

जो न सोने के कन उसे मिलते ।
    न्यारियाँ राख किस लिये धोता ॥
मत रुको देख फट फटे कपड़े ।
    लाल गुदड़ी में क्या नहीं होता ॥ २ ॥

है किसी काम का न रंग गोरा ।
    जो दिखाई पड़ा हृदय काला ॥
है बड़ा ही अमोल काला रंग ।
    मिल गया होय जो हृदय आला ॥ ३ ॥

क्या हुआ उच्च वंश में जन्मे ।
    जो ऊँचा जी में पाप का कूँचा ॥
नीच कुल का हुए न कुछ बिगड़ा ।
    जो हृदय हो महान औ ऊँचा ॥ ४ ॥

क्य भला ठाट है अमीरी का ।
    बैठ जिसमें है विकाश पाती ॥
सादगी कहीं भली है, जिसमें—
    है सुजनता झलक दिखा जाती ॥ ५ ॥

खिला फूल।

(१)

आज यह बात हम बतायेंगे। खिला फूल किस लिये भाता॥
किस लिये आँख में बसा है यह। किस लिये मान है बहुत पाता॥

(२)

ऊबता है कभी न काँटों में। देखते हैं उसे सदा हँस मुख॥
पास आये खुली मँहक उसकी। कौन पाता नहीं निराला सुख॥

(३)

रंग उसका सदा रहा प्यारा। ढंग भी कब मिला न मन भाया॥
फिर उसे क्यों न लोग चाहेंगे। मान गुन से न हाथ कब आया॥

एक तिनका।

मैं घमंडों में भरा ऐंठा हुआ।
एक दिन जब था मुँडेरे पर खड़ा॥
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ।
एक तिनका आँख में मेरी पड़ा॥ १॥
मैं झिझक उट्ठा, हुआ बेचैन सा।
लाल होकर आँख भी दुखने लगी॥
मूँठ देने लोग कपड़े की लगे।
ऐंठ बेचारी दबे पाँवों भगी॥ २॥
जब किसी ढब से निकल तिनका गया।
तब 'समझ' ने यों मुझे ताने दिये॥
ऐंठता तू किस लिये इतना रहा।
एक तिनका है बहुत तेरे लिये॥ ३॥

एक मसा ।

देख कर ऊँचा सजा न्यारा महल ।
और गहने देह के रत्नों जड़े ॥
पास बैठी चाँद-मुखड़े-वालियाँ ।
फूल ऐसे लाडिले, सुन्दर, बड़े ॥ १ ॥

याद कर फूली हुई फुलवारियाँ ।
फूल अलबेले महँक प्यारी भरे ॥
थीं फलों से डालियाँ जिनकी लदी ।
बाग के वे पेड़ बीछे बरहरे ॥ २ ॥

फल रसीले और रंगा व्यंजन सभी ।
सुख सुखों का देख मन माना हरा ।
तन लगे ठंढी हवा आनंद पा ।
रात में अवलोक नभ तारों-भरा ॥ ३ ॥

कह उठा एक, राज मद-माता हुआ ।
भौंह दोनों चौगुनी टेढ़ी किये ॥
कौन मुझ सा है अहा ! मैं धन्य हूँ ।
है बना संसार सब जिसके लिये ॥ ४ ॥

एक मसा उस काल उसकी नाक पर ।
बैठ कर बोला लहू पी कनमना ॥
है बना तेरे लिये संसार सब ।
और मेरे वास्ते तू है बना ॥ ५ ॥

कुछ बूँदियाँ ।

थी बरसना चाहती छाई घटा ।
किन्तु तो भी थीं बहुत बूँदें अड़ीं ॥
मच गई थी बीच उनके खलबली ।
देख यह कुछ बूँदियाँ यों कह पड़ीं ॥ १ ॥
किसलिये बहनो ! बता दो हो अड़ी ।
तुम सबों ने क्यों गँवा जीवट दिया ॥
क्या कहेंगे लोग जी में, सोच लो ।
जो न धरती को बरस कर तर किया ॥ २ ॥
है यहाँ मिलती बड़ी सुथरी हवा ।
है यहाँ कुछ और ही नभ की छटा ॥
स्याम रंगत की बड़ी मन-मोहनी ।
बादलों की है यहाँ बाँकी अटा ॥ ३ ॥
निपट चंचल दौड़ने वाली बड़ी ।
जो बहुत ही हम सबों से है हिली ॥ ४ ॥
घूमती दिन रात हैं जिस पर चढ़ी ।
मन-चली घोड़ी हवा की है मिली ॥ ४ ॥
साड़ियाँ देती पिन्हा हैं सत रँगी ।
सामने पड़ रँग बिरंगी रवि-किरन ॥
चित्त किस का मोह जाता है नहीं ।
देख कर जिनकी बड़ी न्यारी फबन ॥ ५ ॥
हैं यहाँ पर मिल रहे सुख नित नये ।
पर न तब भी आपदा सकती है टल ॥
हैं डरा देते गरज करके जलद ।
कौंध कर बिजली बनाती है विकल ॥ ६ ॥

फिर सहमना हो नहीं सकता भला।
जोहती हैं हम सजों का मुख धरा॥
पा हमें पौधे बड़े होंगे सुखी।
कितने ही सूखा वदन होगा हरा॥ ७॥
है यहाँ पर भी नहीं सुख की कमी।
फूल खिल कर गोद में लेंगे हमें॥
मोतियों की सी दमक दिखलायेंगे।
नोक पर तृण की हमारे कण थमे॥ ८॥
जो नहीं हम सब दिखायेंगी दया।
हो सकेगा किस तरह शीतल अचल॥
बढ़ सकेंगी किस तरह नदियाँ घटी।
सूखता सर किस तरह होगा सजल॥ ९॥
प्यास धरती की बुझेगी किस तरह।
कर सकेगा ऊसरों को कौन तर॥
जी सकेगी ये बेचारी दूब क्यों।
चातकों की किस तरह होगी बसर॥ १०॥
है सदा से ही जगत की रीति यह।
काम एक से दूसरे का है चला॥ ११॥
और लोगों की भलाई के लिये।
धूल में मिल जाँय तो भी है भला॥ ११॥
काम इतनी बात से ही हो गया।
भर भराकर साथ सब बूँदें गिरीं॥
हो गई आनन्द-मय सारी धरा।
मोद की सब ओर डौंडी सी फिरी॥ १२॥

फूल और काँटा ।

हैं जनम लेते जगह में एक ही ।
एक ही पौधा उन्हें है पालता ॥
रात में उन पर चमकता चाँद भी ।
एक ही सी चाँदनी है डालता ॥ १ ॥

मेह उन पर है बरसता एक सा ।
एक सी उन पर हवायें हैं बहीं ॥
पर सदा ही यह दिखाता है हमें ।
ढंग उनके एक से होते नहीं ॥ २ ॥

छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ ।
फाड़ देता है किसी का वर बसन ॥
प्यार-डूबी तितलियों का पर कतर ।
भौंर का है वेध देता श्याम तन ॥ ३ ॥

फूल लेकर तितलियों को गोद में ।
भौंर को अपना अनूठा रस पिला ॥
निज सुगंधों औ निराले रंग से ।
है सदा देता कली जी की खिला ॥ ४ ॥

है खटकता एक सब की आँख में ।
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर ॥
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे ।
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ॥ ५ ॥

१ उद्भ्रान्त प्रेम (गद्य-काव्य)

इसे बंगाल के प्रसिद्ध गद्य लेखक श्रीयुत चन्द्रशेखर मुखोपाध्याय ने लिखा है और मनोरञ्जन-सम्पादक, पण्डित ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने अनुवाद किया है। मूल्य केवल . . . . ।॥)

प्रेम क्या है? प्रेम कैसे करना चाहिये? प्रेम की महिमा कितनी है? सच्चा प्रेम कैसा होता है? इन विषम समस्याओं की इसके पढ़ने से पूर्ति हो जायगी। क्या कल्पना कौशल में, क्या उच्च विचारों में, क्या उच्च भावों में, क्या सौन्दर्य्य वर्णन में, क्या नैसर्गिक दृश्य दिखलाने में, क्या महिलाओं की मर्म-कथा कहने में, क्या अन्तःकरण के अन्तरतम प्रदेश को प्रत्यक्ष कर दिखाने में, और क्या मानसिक सूक्ष्म विकारों को व्यक्त करने में यह पुस्तक अपनी सानी नहीं रखती। इस जोड़ का दूसरा गद्य काव्य हिन्दी संसार में नहीं है। भाषा बड़ी मनोहारिणी है।

सूक्ति-मुक्तावली (पद्य-काव्य)

कविवर पण्डित रामचरित उपाध्याय द्वारा लिखित। मूल्य - ।=)

आपकी कवितायें ठीक " प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यः " के उदाहरण होती हैं। उनमें भाव और हृदयोद्गार खूब भरे रहते हैं। उनके बार २ पाठ से भी सन्तुष्टि नहीं होती। किसी की कविता में सारल्य है तो माधुर्य्य नहीं, माधुर्य्य है तो सारल्य नहीं। यदि किसी में ये दोनों बातें हैं तो उसमें भाव ही का अभाव रहता है। यदि कहीं तीनों हैं तो पद-मैत्री ही ठीक नहीं। यदि यह भी हुई तो हिन्दी के मुहावरे बिगड़ जाते हैं। पर आपकी कविता में जैसा सारल्य वैसा माधुर्य्य, जैसी पदमैत्री वैसी ही शुद्ध हिन्दी भी होती है। विशेष लिखना व्यर्थ है। पुस्तक नवजीवन डालनेवाली है।

पता—मैनेजर, ग्रन्थमाला-कार्यालय, बाँकीपुर।